करफ्यू

इस नाटक (करफ्यू) के अभिनय–प्रदर्षन, नाट्य–पाठ, अनुवाद, प्रसारण तथा फिल्मीकरण आदि के लिए इसके लेखक की लिखित पूर्व अनुमति अनिवार्य है।

पता– 54ए, एम0 आई0जी0 फ्लैट, ए–2, पष्चिम बिहार, नई दिल्ली–110063

तब से आज तक

मेरा प्रस्तुत नाटक 'करफ्यू' जबसे 'अभियान' द्वारा पहली बार खेला गया और प्रकाषित हुआ, प्रकाषन के इस संस्करण के बीच, तब से आज तक इस नाटक की रंग यात्रा क्या रही, यह जानना हमारे लिए महत्तवपूर्ण है।

तब से आज तक 'करफ्यू' पूरे भारतवर्ष में खेला गया। गुजराती, मराठी, बंगला और अंग्रेजी भाषाओं में इसके अनुवाद हुए। प्रदर्षन और मंचन की कसौटी पर रखा गया। इस संबंध में 'करफ्यू' के कुछ महत्वपूर्व प्रदर्षनों की चर्चा आवष्यक है।

मेरी अपनी रंग–कसौटी से इसके महत्वपूर्ण प्रदर्षन हैं–'दर्पन' द्वारा कानपुर और लखनऊ में वंषी कौल के निर्देषन में इसका प्रस्तुतीकरण, 'यवनिका' कलकत्ता द्वारा कलकत्ते के मंच पर कृष्णकुमार के निर्देषन में इसका प्रदर्षन, 'रंग मंडल' द्वारा गुजराती भाषा में अहमदाबाद–दिल्ली में राजू भाई के निर्देषन में इसका प्रस्तुतीकरण।

इसके निर्देषक वंषी कौल ने 'करफ्यू' के बारे में काफी कुछ सोचा। इसके बारे में लिखा, चिंतन–ममन भी किया और अपने प्रदर्षनों से उन्होंने क्या पया–उन्हीं की लिखी हुई एक टिप्पणी यहां प्रस्तुत है–

–मेरे प्रदर्षनों में मंच पर यह नाटक शुरू होता है एक कविता से–हमारे संबंधों में कितना क्या करफ्यू लगा है।–इस कविता के साथ मंच के पर्दे पर 'स्लाइड्स' से दिखाया जाता है–तमाम चेहरे, स्त्री–पुरूष के अनेक मुख–अनेक भावों, मुद्राओं और स्थितियों के–जिनसे लगता है कि ये मुख, ये चेहरे कुछ कहना चाह रहे हैं, पर कह नहीं पा रहे हैं। संप्रेषण नहीं हो पा रहा है। कहीं कोई अदृष्य करफ्यू लगा है। कहीं कोई रोक है, दीवार या चौहद्दी है, जिसे इस तरह न तो तोड़ना ही संभव हो पा रहा है, न बेधना, न ही आरपार कर देना।

एक निर्देषक के रूप में मैं बड़ी गहराई और प्रभावपूर्ण ढंग से यह बता देना चाहता था कि 'करफ्यू' क्या है, इसका अर्थ क्या है, इसका प्रभाव क्या है। करफ्यू व नहीं है केवल, जो व्यवस्था द्वारा, कानून और आज्ञा से किसी शहर पर, कहीं भी, किसी समय शांति और सुरक्षा के लिए बाहर से लगा दिया जाता है। 'करफ्यू' दरअसल वह है जो स्वतः अपने आप पर लगा लिया जाता है। यह लगाया जाता है अपने संबंध–बोध पर, अपने उस दृष्टिकोण पर जहां से, बल्कि जिस चष्मे से हम दूसरों को,इस आसपास के जगत, उसके यथार्थ को देखते हैं। एक 'स्लाइड' द्वारा मैं एक पुल दिखाता हूॅ। पुल के एक ओर एक स्त्री खड़ी है, दूसरी ओर पुरूष, दोनों एक दूसरे से कुछ कहना चाहते हैं, पर कह नहीं पा रहे हैं। ऐसा कहीं कुछ अदृष्य, अजाना है, जो उनके संप्रेषण को नहीं होने दे रहा है– यही है 'करफ्यू' । चारों ओर भीड़ है, उस भीड़ में एक मुख किसी को ढूंढ़ रहा है, कुछ कहना है उसे, पर संभव नहीं हो पा रहा है। वह अकेला पड़ गया है उस मानसिक बौद्धिक करफ्यू के कारण जो चारों तरफ अदृष्य रूप से फैला है।

इसके लिए मैंने जाल का ही पूरा मंच और करफ्यू का पूरा दृष्य विधान तैयार किया। जाल का ही बना हुआ कमरा है–जहां हम अपनी बैठक, सोने के कमरे में स्वतः अनजाने कैद हैं। यह जाल हमीं ने अपने हाथों अपने चारों तरफ बुना है। यह सच है कि जीवन में कभी ऐसी घड़ी आती है, जब हम इस घेरे को तोड़ देना चाहते हैं–पर हम केवल व्यक्ति स्तर पर ऐसा करना चाहते हैं, जो असंभव है। यह संभव है केवल सामाजिक स्तर पर, जिसमें वे तमाम

लोग सहभागी हों, जिनसे यह करफ्यू लगा समाज बना है, वे सब इस कार्य में शामिल हों। क्योंकि सब फंसे हैं उस जाल में। वह जाल अनेक स्तरों का है–वह सूक्ष्म भी है और स्थूल भी।

'करफ्यू' नाटक समाप्त होता है इस बिन्दु पर कि करफ्यू फिल–हाल टूट गया है, पर हम उससे बाहर नहीं है। इसी के लिए नाटक का अन्त उस पूजा भाव से है कि फिर ऐसा न हो। पर मैं दर्षकों को एक जबरदस्त धक्का देना चाहता था कि देखो तुम इससे मुक्त नहीं। तुम उसी घेरे में बंदी हो। जब तक तुम अकेले–अकेले इसे तोड़ने के लिए प्रयत्न करोगे, यह असंभव है। सब मिलकर ही इसे तोड़ सकते हैं। अलग होना ही तो है करफ्यू का स्वतः हट जाना, टूट जाना।

मैंने 'करफ्यू' नाटक को आधुनिक भारतीय रंगमंच और नाट्य लेखन की एक महत्वपूर्ण रचना पाया है। बहुत गहरी, बहुत मानवीय है इसकी जीवन सामग्री, इसका विषय। इसके रंग–विन्यास, चरित्र और संवाद में अर्थपूर्ण काव्य तत्व है। 'करफ्यू' का एक सांस्कृतिक, राजनीतिक आयाम है, पर मुझे जो सबसे अधिक मूल्यवान हाथ लगा, वह है इसमें व्याप्त एक काव्य चेतना, एक गहन अनुभूति, दर्षकों को मैं यही अनुभव देना चाह रहा था। 'करफ्यू' बाहर लगा है, ऐसा क्यों कहते हो ? किसी ने हम पर 'करफ्यू' लगा दिया है, ऐसा क्यों मानते हो ? देखो न, करफ्यू लगा है हमारे भीतर। हमीं ने लगा रखे हैं। संबंध और है क्या ?

– वंषी कौल

कलकत्ते में 'यवनिका' के प्रदर्षनों से दर्षक समाज की ओर से यह षिकायत आई कि इसका अंत समझ में नहीं आता। लोग इससे संतुष्ट नहीं। अस्पष्टता, सूक्ष्मता का आक्षेप और भी अनेक क्षेत्रों और दिषाओं में मुझ तक आते रहे हैं।

नाटक लिखना मेरे लिए व्यक्ति से सामाजिक होना है। बनना नहीं, होना। अस्तु मैंने इसक अंत फिर से लिखा है–केवल अंत।

राजू भाई का गुजराती प्रदर्षन, और उसमें प्रतिभा रावल की कविता की भूमिका मेरे लिए इस कारण बहुत महत्वपूर्ण है कि मैंने यह अनुभूत किया कि मूलतः अभिनेता का माध्यम है–जैसे कि फिल्म निर्देषक का माध्यम। इससे मैंने यह पाया कि पाठक में अभिनेता को ही कैसे अपने नाटक की भाषा, संवाद और कार्य कर दिया जाय। अभिनेता स्वयं मेरा वाहक, माध्यम हो जाय, और मैं स्वयं अभिनेता का वाहक, माध्यम हो जाऊं।

–लाल

'करफ्यू' के बारे में लेखक की

निजी डायरी से

हमारे समसामयिक समाज में मनुष्य के आपसी संबंध कुछ अजीब सीमाओं के भीतर ही जन्म लेते हैं और उसी सीमा में रहकर खत्म हो जाते हैं। इस दुर्भाग्य का सबसे कष्टपूर्ण उदाहरण हमारा दांपत्य जीवन है। पति–पत्नी, चाहे वे प्रेम–विहार के फलस्वरूप मिले हों, चाहे परंपरागत विवाह से, एक–दूसरे को थोड़ा–सा जानकर उसी के भीतर बल्कि उसी थोड़ी–सी पहचान का करफ्यू लगाकर जीवन जीने लगते हैं। पति–पत्नी के व्यक्तित्व में और भी कितने अदृष्य, अनदेखे, बिना पहचाने, बिना ढूंढे, बिना तलाष किये हुए पक्ष 'डाइमेंषन्स' रह जाते हैं और हमारा दांपत्य जीवन कृत्रिमता, दिखावेपन, ढोंग का षिकार बनकर रह जाता है। पति–पत्नी अपने उस अनदेखे, अतलाषे, व्यक्तित्व को अपने परिवार में, अपने आपसी संबंध में जब नहीं जी पाते तो वे जब भी कहीं उचित, अनुचित अवसर या स्थिति पाते हैं तो सहसा उसे (अप्रकट व्यक्तित्व को) प्रकट कर आष्चर्यचकित हो जाते हैं और यहीं से एक नये जीवन का उद्‌घाटन सहसा हो जाता है।

इस नाटक का बाहरी परिवेष है एक ऐसा शहर, जहां पर कोई 'रॉयट' हो चुका है और पूरे शहर पर करफ्यू लगा दिया गया है। यह 'रॉयट' और करफ्यू एक तरह से हमारे जीवन के भीतर रॉयट और करफ्यू का ही प्रतिफलन, बल्कि उसकी का 'प्रोजेक्षन' है, 'एक्सटेषन' है। हम यों भी कह सकते हैं कि चूंकि हमारा व्यक्तिगत जीवन बौद्धिक, शारीरिक, मानसिक करफ्यू में, हद में, पाबन्दी में, वर्जनाओं में घिरकर जिया जाता है, इसी नाते हम अपनी जीवन–षक्ति को अभिव्यक्त करने के लिए समाज में, घर में, पास–पड़ोस में सहसा अपराध कर बैठते हैं, रॉयट करते हैं और इस तरह से अपने भीतर लगे करफ्यू को तोड़ना चाहते हैं। मैं कहना यह चाहता हूँ कि चूंकि हमारा आपसी जीवन चाहे वह प्रेम हो या विवाह या कोई भी कर्म को, करफ्यू के भीतर रूंधा, बंधा और यहां तक कि कैद रहता है, तभी समाज में आए दिन इतने अमानवीय अपराध और इतने 'रॉयट्स' होते रहते हैं। इस तरह हम अमानवीय, अस्वाभाविक होकर ही अपने सहज मानव को, मानवीय संबंधों, बोधों को प्रकट करने के लिए मजबूर होते है।

गौतम एक संपन्न युवा पति है जो एक मिल का संचालक भी है। इसका जीवन इसी के द्वारा और शायद अभिजात तत्वों, परंपराओं द्वारा बनाये हुए किन्हीं दृष्य–अदृष्य, परोक्ष–अपरोक्ष हदों, सीमाओं, नियमों, शर्तो, सभ्यताओं के भीतर बंदी होकर जिया जा रहा है। इसका यह जीवन ऊपर से ऐसे शांत तालाब की तरह है, जिसमें प्रत्यक्षतः शायद कहीं कोई भी भंवर या लहर नहीं है। इसके घर में एक मनीषा आती है और वह इस शांत जल को धीरे–धीरे पत्थर मार–मारकर जगाती है और एक–एक पर्त को प्याज के छिलके की तरह खोलती हुई चली जाती है और इस

प्रक्रिया में जब वह गौतम के व्यक्तित्व पर लगे हुए करफ्यू को तोड़ती है तो उसे उसके भीतर एक ऐसा बंदी तथा ऐसा अस्वाभाविक पुरूष मिलता है, जो कोई भी स्वाभाविक काम करने के लिए तैयार नहीं है। वह एक हिस्र पशु की तरह सामने प्रकट होता है। यह 'तलाष' दोनों के लिए आष्चर्यजनक और शायद त्रासद है।

इसके बाद नाटक में तीसरे और चाथे ये दृष्य आते हैं और ये दोनों दृष्य विभिन्न धरातलों पर चरित्र पर लगे करफ्यू के टूटने के दृष्य हैं। पांचतें दृष्य में जब कविता अपने घर लौटती है और उस सूने घर में अपने पति को देखती है तो उसे आज उस पूरे घर का एक नया अर्थ मिलने लगा है। कविता एक नये जीवन के अनुभव से होकर गुजरी है और वह अब शायद वह कतिता नहीं है, जो इस घर में कितने वर्षो से रहती आई है। पर गौतम भी अब वह नहीं जो पहले केवल पति के रूप में रहता आया है। उसे भी पहली बार एक नया जीवन–अनुभव पाया है और साथ ही अपने से उसका साक्षात्कार भी हुआ है। अर्थात् दोनों की तलाष ने दोनों को एक नये जीवन–बिन्दु पर पहुॅचाया है।

इस तलाष के बाद जब उसकी भेंट रात के पिछले पहर में अपनी पत्नी कविता से होती है तो वह फिर उनहीं झूठों का सहारा लेकर अपने–आपको छिपाने की कोषिष करता है, जैसे कि वह पहले पत्नी के सामने करता रहा था। लेकिन इस बीच कविता एक नयी स्त्री के रूप में उसके सामने आई है, जिसका अंदाज या परिचय पति को पहले नहीं है। यह नया साक्षात्कार स्वभाववष, थोड़ी देर के लिए गौतम बर्दाष्त नहीं कर पाता। तब क्षण–भर के लिए कविता उसी झूठ का सहारा लेने लगती है, जिसका सहारा अक्सर आज की व्याही हुई स्त्रिंया अपने जीवन में लेती हैं। वह मजबूरन एक काल्पनिक अनुभव बताने लगती है, लेकिन नाटकीय परिणति के अनुसार उसकी वह कल्पना, वही घटा हुआ यथार्थ सिद्ध होने लगता है जो उस घर में गौतम और मनीषा के बीच कविता की अनुपस्थिति में घट चुका है। दोनों चुपचाप कहीं गहरे मन में एक–दूसरे को पहली बार पा लेते हैं और यह पाना तब और भी अधिक कविता के लिए अर्थवान हो जाता है जब वह घर के भीतर मनीषा को पा लेती है। मैं मानता हूॅ कि शायद जीवन में ऐसा नहीं होता, लेकिन मेरा विष्वास है जीवन में ऐसा क्यों न हो, और यही इस नाटक की विषेष रचना है, लेखन नहीं। आज जीवन में जिस बुनियादी परिवर्तन की जरूरत है, मैंने यह इषारा तब होती है जब व्यक्ति अपने पर लगे हुए करफ्यू को तोड़कर अपने को एक नये रूप में तलाषने का प्रयत्न करता है। और अंत में गौतम–कविता एक–दूसरे को उस नये तलाषे, नव प्रकट रूप में पाते हैं, जो उनके वास्तविक दांपत्य जीवन की नयी बुनियाद हो सकती है। उनके व्यक्तित्वों का यह नया 'डाइमेंषन', जो उन्होंने इस प्रक्रिया से प्राप्त किया है, यह उनके जीवन को अधिक संपूर्ण और उन्हें वास्तव में मनुष्य की तरह जीवन जीने के लिए एक नया क्षेत्र देगा, जिसका पता उन्हें अब तक न था।

कविता गौतम की पत्नी है। मगर यह किस तरह गौतम की पत्नी हुई है, इसके पीछे एक बीती हुई कहानी है। कविता को किसी युवक से इससे पूर्व प्रेम रहा है और वह प्रेम शायद प्रगाढ़ और अनुभवमय भी रहा है, लेकिन जब प्यार की चरम परिणति का बिन्दु आया तो वह वहां से कायर की तरह भाग निकली थी और भागकर वह आज गौतम की पत्नी हुई है। उसके व्यक्तित्व की यह कायरता ही उसे गौतम की पत्नी के रूप में बनाए हुए हैं। ऐसा लगता है कि कहीं न कहीं शायद हर आधुनिक स्त्री जिन्दगी की कायरताओं से गुजकर ही सुविधा के लिए और

समाज में इज्जत और सुख पाने के लिए अन्ततः शादी कर लेती है और एक बंधे'बंधाए और सीमित क्षणों की दांपत्य जिन्दगी इस तरह जीती रहती है कि कहीं कोई उसकी और सच्चाई न जान जाए। इसलिए भी वह स्वयं अपनी और दूसरों की जिन्दगी पर 'करफ्यू' लगा लेती है और उसके भीतर वह आराम की जिन्दगी बसर करता रहता है।

मनीषा के भी जीवन में बहुत कुछ घट चुका है। वह प्यार के माध्यम से अपने–आपको पाने के लिए कई बार टूटी है और वह आप भी अपने'आपकों तलाषने के लिए समाज में बिल्कुल स्वतंत्र होकर अबोध, निष्पाप षिषु की तरह घूम रही है। इस तलाषने की प्रक्रिया में उसे जब गौतम जैसे पुरूष मिलते हैं तो उसे दो अनुभूतियां होती हैं–वह कब तक भागती रहेगी ? समाज में जो कुछ भी सच्चाई है, उसे स्वीकार करना होगा। वह स्वयं जैसे अपने ऊपर आजादी से नाम पर लगाए हुए करफ्यू को पहली बार अनुभूत करती है उसे तोड़ देना चाहती है। आज की इतनी आजादी भी उसी करफ्यू का ही दूसरा पक्ष है, रूप है, शायद प्रतिक्रिया है।

संजय एक तरह से गौतम का ही दूसरा पक्ष है, जैसे मनीषा कविता का ही दूसरा पहलू है। संजय ने अपनी पत्नी को छोड़ दिया है और अपनी कला के अभिमान में एक अहडकारी जीवन जी रहा है। लेकिन ज बवह कविता के संपर्क से यह महसूस करता है कि उसका अहडकार कितना छोटा है और उसका व्यक्तित्व कितना भागने वाला है तब वह पहली बार स्वयं पर सोचने पर विवष होता है, उसके व्यक्तित्व को तब और चुनौती मिलती है, जब कविता अपने भावुक व्यक्तित्व से संजय को भी उसी पुरूष के रूप में देखने लगती है और उसे भी अपनी कायरता का (हिम्मत) षिकार बनाना चाहती है।

इस नाटक का पहला प्रस्तुतीकरण दिल्ली की संस्था 'अभियान' ने किया और इसका निर्देषन तथा प्रस्तुतीकरण योजना श्री टी0पी0 जैन ने की। सौभाग्य से इस नाटक के चरित्रों का अभिनय अषोक सरीन (गौतम), कविता नागपाल (मनीषा), सुधा चोपड़ा (कविता) और श्याम अरोड़ा (संजय) ने किया। ये चारों अभिनेता दिल्ली के महत्वपूर्ण अभिनेता हैं और इसके निर्देषक श्री टी0पी0 जैन को मैं नाटक का एक गम्भीर पाठक और व्याख्याकार मानता हूँ। नाटय–पाठ के दौरात टी0पी0 जैन से इस नाटक को लेकर मेरी बहुत सारी बातें हुई और हम दोनों ने मिलकर एक तरह से इस नाटक के मर्म को पाने की चेष्टा की। चरित्रों पर लगे करफ्यू अवष्य छूटने चाहिए, यह सत्य मैंने टी0पी0 के साथ अनुभव किया। मैंने किसी तरह से रिचुअल मंत्रों और लोकगीतों के सहारे इस सत्य को मंच पर प्रस्तुत करने के लिए कार्य किया। इसके लिए मैं टी0पी0 जैन के साथ्ज्ञ उन चारों अभिनेताओं का कृतज्ञ हूँ जिन्होंने शुद्ध रंगमंचीय मुहावरे में इसे मंच पर प्रस्तुत कर इस नाटक में ध्वनित जीवन को एक अर्थ दिया और इसे साकार बनाया।

इस नाटक की मंच–कल्पना टी0पी0 के साथ 'आइफेक्स' के प्रकाष निर्देषक श्री एस0 मुकर्जी ने की थी। मंच की सारी तस्वीर अर्थात् मंच पर एक कल्पनापूर्ण पर यथार्थ पिंजरा बनाया गया था और उस पिंररे के भीतर ही इस नाटक के पांचों दृष्य प्रस्तुत किय गए थे। दो दृष्यों तक यह पिंजरा बड़ा ही क्रूर और आक्रामक लगता था लेकिन तीसरे दृष्य से वह पिंजरा धीरे–धीरे पारदर्षी और कोमल होने लगा था और अंत में जहां से मोमबत्तियों जलनी शुरू होती हैं वहां से पिंजरा सर्वथा अदृष्य हो जाता है। और सारे चरित्र जैसे स्वतंत्र होकर पहली बार अपने अस्तित्व को प्राप्त कर लेते हैं। यह पिंजरा उसी करफ्यू का प्रतीक था।

टी0पी0 जैन ने अभिनय से लेकर निर्देषन और व्याख्या तक बहुत सारे अदृष्य तत्वों को मंच पर प्रत्यक्ष किया था, जिसके लिए मैं उन्हें सदा बधाई दूंगा। और भविष्य में उन सारे अभिनेताओं और निर्देषकों के प्रति कृयज्ञ रहूॅगा जो अपने निजी स्तर से इसकी स्वतंत्र और मौलिक व्याख्याएं करेंगे।

इस नाटक के बारे में मैंने जो कुछ लिखा है वह केवल मेरी निजी डायरी के कुछ 'नोट्स' हैं जिन्हें मैंने अपने लिए लिख छोड़ा था लेकिन आज जब यह नाटक आप सबके हाथों सौंप रहा हूॅ तो मुझे लगा, मेरे अपने निजी नोट्स अब जैसे मेरे लिए नहीं है।

मनीषा का चिरत्र इस नाटक की वह रक्त–रेखा है, जिसने मुझे बहुत ही आतंकित किया है। इसने इस नाटक के बारे में जितने मानवीय–अमानवीय अनुभव किए हैं और यह जिस जीवन–अनुभव की प्रक्रिया से गुजरी है वह मेरे लिए बड़ा ही सार्थक बिन्दु रहा है। जैसे मनीषा ने ही मुझे यह अनुभव दिया कि हमारा सारा शहर हमारे करफ्यू लगे हुए घरों का जड़ विस्तार है। गौतम–मनीष, संजय–गौतम और परस्पर सभी अपने अनुभव से निकलकर जितने महत्वपूर्ण और सामर्थ्यवान होते हैं, वही इस नाटक की वास्तविकता है। और यही मेरा अस्तित्व है।

'करफ्यू' का पहला प्रस्तुतीकरण
'अभियान' द्वारा आइफेक्स के मंच पर नयी दिल्ली में
12 नवम्बर 1971 को हुआ।

भूमिका में

मनीषा : कविता नागपाल
गौतम : अषोक सरीन
संजय : श्याम अरोड़ा
कविता : सुधा चोपड़ा

निर्देषन
श्री टी0पी0 जैन

मंच और प्रकाष
यस0 मुकर्जी

चरित्र

मनीषा

गौतम

संजय

कविता

पहला दृष्य

बाहर से तेजी से मनीषा आती है, मानो कोई उसका पीछा कर रहा हो। कमरे में आकर एक क्षण को ठिठकती है। फिर कमरे–भर में नजर दौड़ाती है। ट्रे में से एक फल उठाकर दांत से काट–काटकर खाने लगती है। एक मैगजीन उठाकर देखती है और आराम से सोफे पर बैठ जाती है। कुछ क्षणों बाद टेलीफोन की घण्टी बजती है। भीतर से गौतम आकर ...

गौतम : हैलो। ... गौतम। हां, फैक्ट्री बन्द कर दीजिए। और क्या ? ... हूँ ... बिलकुल किसे मालूम था, आज फिर अचानक इस तरह ... हां, हां, कोई बात हो तो मुझे फोन कीजिए।

मनीषा : (उसकी ओर देखती रहती है। गौतम अन्दर जाने को मुड़ता है, तभी उसकी नजर मनीषा पर पड़ती है।)

गौतम : आप ...

मनीषा : (फल खाती रहती है।)

गौतम : (क्या करे)

गौतम : आप ... (कुछ बोलना चाहता है।)

मनीषा मैगजीन देखती हुई

मनीषा : हैलो ...

गौतम : (घूरता रहता है।)

मनीषा : पहचाना नहीं ? एक बार मुलाकात हुई थी आपसे, करीब दो साल पहले।

गौतम : जी ?

मनीषा : विज्ञापन के लिए। गूंगे–बहरों के लिए वह 'चैरिटी शो।'

गौतम : (याद करने की कोषिष करता हुआ) दो साल पहले ....

मनीषा : आपने बड़े गुस्से में ...

गौतम : याद नहीं पड़ता।

मनीषा : कोई बात नहीं। फल बड़ा मीठा है।

गौतम : आप ...

मनीषा : जी आप ...

गौतम : आज कैसे ?

मनीषा : आप ये तस्वीरें देखते हैं ? (उठकर दिखाती है।) ये तस्वीरें।

गौतम : तषरीफ रखिए।

मनीषा : क्या ?

गौतम : तषरीफ।

गौतम : बैठिए।

मनीषा : बैठ जाऊं या ...

हंसती है।

विराम

मनीषा : लगता है, अभी दफ्तर से आए हैं !

गौतम : (चुप हैं।)

मनीषा : कम बोलते हैं !

गौतम : (चुप)

मनीषा : टाई उतार दीजिए ना।

बढ़ क रमजे से टाई खींच लेती है।

मनीषा : कहां की है ? जापानी लगती है।

गौतम : आप ...। अजीब ...

मनीषा : बैठिए। ना, ना, तषरीफ रखिए।

गौतम गम्भीरता से अन्दर चला जाता है।

मनीषा : सुनिए, थोड़ा–सा पानी।

चीजों को छू–बजाकर देखती जा रही है।

मनीषा : अन्दर आ जाऊं पानी पीने ?

गौतम : (लेकर आया है और मेज पर रख दिया है) पीजिए।

मनीषा : (पीती है।) खाइएगा ?... जूठा है।

गौतम : (चुप है।)

मनीषा : ये 'कट ग्लास' ? बड़े लाट साहब हैं।

गौतम : आपको बात करनी नहीं आती ?

मनीषा : आपको आती है ?

विराम

गौतम : घर जा रही थीं न ?

मनीषा : घर ?

गौतम : फोन कर लीजिए।

मनीषा : 'होम, स्वीट होम'।

गौतम : बता दीजिए आप कहां हैं ?

मनीषा : आप अन्दर क्या कर रहे थे ?... आराम ? अकेले या बीवी के साथ।

गौतम : बीवी ?

मनीषा : धर्मपत्नी... घर की मालकिन।... विवाहित हैं न ?

गौतम : विवाहित...

मनीषा : नहीं हैं ?

गौतम : यदि कहूँ नही ंतो...

मनीषा : यह मेरी कल्पना से उलटा होगा।

गौतम : आप कल्पना भी करती हैं ?

मनीषा : शून्य को भरने के लिए।

गौतम : और क्या–क्या करती हैं ?

मनीषा : 'फ्लर्ट'।

विराम

मनीषा : आप क्या–क्या करते हैं ?

गौतम : मैं टैक्सटाइल...

मनीषा : जुलाहे हैं...

गौतम : याने...?

मनीषा : उसके अलावा ? छोड़िए... लीजिए, टाई बांध लीजिए।

विराम

गौतम : कहां रहती हैं ?

टाई गले में बांधता है।

मनीषा : टाई की 'नॉट' ऐसे रखिए ... ढीली।

गौतम : कहां रहती हैं ?

मनीषा : आपकी पत्नी कहां हैं ?

गौतम : (चुप) कुछ और खाएंगी ?

मनीषा : क्या खिलाएंगे ?

गौतम : जो ...

मनीषा : कुछ भी ...

गौतम : (मुस्कराता है।)

मनीषा : आपके मुस्कराने में भी कायदा–कानून ?

गौतम : जरूरी है।

मनीषा : किसलिए ? जिस चीज के लिए वह जरूरी है, वह क्या है ? (सहसा) ओहो, कमीज का यह बटन खोल लीजिए ना।

कालर का बटन खोल देती है।

गौतम : आप कहां रहती हैं ?

मनीषा : आपकी 'पत्नी' कहां हैं ?

गौतम : अन्दर ... भीतर ...

मनीषा : पर्दे में रहती हैं ?

गौतम : नहीं, वो तबीयत ठीक नहीं।

मनीषा : इस घर में किसकी तबीयत ठीक रह सकती है !

गौतम : क्यों ? मुझे देखिए !

मनीषा : देख रही हूँ। 'टैक्सटाइल' की स्टाम्प लगा जुलाहा।

विराम

गौतम : आपका शुभ नाम ?

मनीषा : शुभ नाम ...

मनीषा हंसती है।

गौतम : इसमें हंसने की क्या बात ?

मनीषा : शुभ नाम ...। नाम में शुभ क्या होता है ?

गौतम : परिचय का तरीका है।

मनीषा : परिचय ? नामों का परिचय ?

गौतम : पहला परिचय नाम से ही होता है।

मनीषा : किसने कहा ?

गौतम : माना जाता है।

मनीषा : माना नहीं, लादा जाता है। जैसे पत्नी कहने से बहुत कुछ ऐसा लाद दिया जाता है...

अभिनय करती है।

गौतम : बन्द कीजिए अपनी...

मनीषा : बन्द तो है ही। सब कुछ, परिचय, मिलन, प्रेम,

गौतम अन्दर जाता है। इस बीच वह टेप रिकार्ड चला देती है।

मनीषा : यह बजता है।

आवाज बढ़ा देती है।

गौतम : (अन्दत से प्लेट में कुछ लेकर आता है। इड़बड़ाहट से) क्या करती हैं आप ?

मनीषा : क्यों ?

गौतम : वह जाग जाएंगी तो–उनकी तबीयत ठीक नहीं और फिर संगीत (आवाज घटाता हुआ) इस वाल्यूम पर अच्छा लगता है।

मनीषा : कहां लिखा है ?

गौतम : खाइए... मतलब मुंह बन्द कीजिए।

मनीषा : आपके नौकर–चाकर... आया, महाराज, ड्राइवर वगैरह ?

गौमत : कुछ छुट्टी पर हैं, और कुछ...

मनीषा : और इनकी तबीयत खराब हैं। इसलिए आप स्वयं

गौतम : इस तरफ नहीं, इधर मक्खन लगाया जाता है।

मनीषा : और इधर लगाने से क्या हो जाता है ?

गौतम : कायदा है...

विराम

मनीषा : आप भी लीजिए।

गौतम : इस समय कुछ नहीं खाता।

मनीषा : आज खाकर देखिए।

गौतम : नहीं, थैंक्यू।

मनीषा जबरन गौतम के मुंह में दोस्ट लगा देती है।

मनीषा : घूरिए नहीं। चभर–चभर खाइए। कुछ आवाज तो हो।

गौतम : टेलीफोन कर लीजिए।

मनीषा : कहां ?

गौतम : अपने घर।

मनीषा : घर माने ?

गौतम : घर।

मनीषा : घ से घर।

गौतम : कहां रहती हैं ?

मनीषा : उनको पता है– मैं यहां हूँ ?

गौतम : सो रही हैं।

मनीषा : वह आप पर शक करती हैं ?

गौतम : माने ?

मनीषा : आप उनपर शक करते हैं ?

गौतम : यह एक शरीफ आदमी का घर है।

मनीषा : आप चिल्ला सकते हैं ?

गौतम : बेकार की बातें।

मनीषा : मौसम की बातें करें।

गौतम : वैसे मीटर लगा है।

मनीषा : टेम्प्रेचर इसी में देखते हैं। ओह कितनी गर्मी है।

कुर्ते के दो बटन खोलती है।

गौतम : (चुप है। टेलीफोन की घंटी बजती है, उठाता है।) हैलो ··· रांग नम्बर (रख देता है–इस बीच मनीषा घूप के चष्मे को आंखों के सामने लटकाकर देखती है, छत काली नजर आती है।)

गौतम : इसमें देखना क्या है ?

मनीषा : देखिए तो ··· छत में एक सांप नजर आ रहा है।

गौतम उसके कन्धे के पास से छत देखता है। वह हंसने लगती है।

मनीषा : दिखाई पड़ा सांप ?

गौतम : बकवास।

हंसती है–हंसती रहती है–सहसा एक चित्र देखकर।

मनीषा : (सहसा) यही है न आपकी बीवी ? कविता यह आपने लिख है ?

गौतम : कैसे पहचाना ?

मनीषा : दुखी चेहरा।

गौतम : 'इन' की तबीयत न खराब होती, तो इस वक्त कितनी बातें करतीं !

मनीषा : यह 'इन–इन' क्या करते हैं ? कविता नाम अच्छा नहीं है ?

गौतम : शादी के बाद नाम के चारों ओर एक दायरा खिंच जाता है।

मनीषा : कौन खींचता है ?

गौतम : नियम है।

मनीषा : कहां का ?

चित्र रखती है। कांच की कोई चीज उठाकर बजाने लगती है।

गौतम : टूट जाएगी।

मनीषा : कैसे जाना ?

रख देती है।

गौतम : बैंकाक की है।

मनीषा : टूट जाएगी कैसे लगा आपको ?

गौतम : आपक किसी भी चीज में मन क्यों नहीं लगा पातीं ? झट उकता क्यों जाती हैं ?

मनीषा : जान गए आप ? परिचय ...

लुंगी ठीक करने लगती है।

गौतम : आप लुंगी क्यों पहनती हैं ?

मनीषा : साड़ी क्यों पहनी जाती है ?

गौतम : यहां मत कीजिए।

मनीषा : उमस है।

गौतम : बाथरूम में जाइए।

मनीषा : क्यों ?

गौतम : अच्छा नहीं लगता।

मनीषा : किसे ?

मनीषा लुंगी दूसरे ढंग से बॉधती है।

मनीषा : मेरी टांग कैसी है ? कहिए न ! कहिए लाजवाब ! संगमरमर की प्रतिमा ... खजुराहो की नर्तकी !

विराम

मनीषा : क्या देख रहे हैं ? क्या सोच रहे हैं ? यह लौंडिया कितनी चालू है, साली को ...

गौतम : आप मुझे नहीं जानतीं ?

मनीषा : आप तो मुझे जान गए हैं ? क्या इम्प्रेषन है मेरे बारे में ?

गौतम : आप ...

मनीषा : सुन्दर है, विचित्र है, औरों की तरह नहीं है। सब यहीं से शुरू करते हैं, फिर तरह–तरह की बातें बनाते हैं। कोई राजनीति की, कोई आर्ट की, कोई औरतों की आजादी की। साले बदमाष, अपने–अपने बुने हुए जाल फेंकते हैं सब ...

गौतम : लेकिन आप बच निकलती हैं।

मनीषा : हां, अक्सर।

गौतम : गलतफहमी है।

मनीषा : आपकों है मेरे बारे में–दूसरों की तरह, सब मुझे पहले से ही जानते हैं।

कहती हुई तलवार उठा लेती है।

गौतम : यह मुझे स्पेन में मिली थी।

मनीषा : इसमें तो जैसे जंग लग गई है। आपके लिए हर चीज क्या केवल सजावट है–बीवी से लेकर तलवार तक ?

नंगी तलवार की धार पर जैसे सितार बजाती है।

मनीषा : आप कर सकते हैं ?

गौतम तलवार की धार पर मनीषा की तरह उंगली फेरने का प्रयत्न करता है–डरा हुआ, लगता है उसकी उंगली कट गई है।

गौतम : ओह नानसेन्स !

मनीषा : (ले लेती है।) अच्छा एक खेल खेलते हैं। दोनों आंखों के बीच में नाक से सटाकर, मैं इसे खड़ी रखूंगी। ठीक बीचोबीच देखिए ... और पीछे की ओर चलिए। हमारे बीच फासला चार कदम का रहे। चलते रहिए। आंख हटे नहीं, फासला कम न हो आपसे कोई चीज छू न जाए। रेडी ... स्टेडी ... गो।

गौतम खेल में हार जाता है।

गौतम : यह भी कोई खेल है !

मनीषा : अच्छा, आप पकड़िए ... मैं चलती हूँ। ... ठीक से पकड़िए। डरिए नहीं।

गौतम : (थककर) आप आराम से बैठ नहीं सकतीं ?

मनीषा : उसकी आदत आपकों है।

गौतम : मेरी आदतें इतनी जल्दी जान गई ?

मनीषा : आज तक जो कुछ जाना है, उसके आधार पर आपकों पहचानना मुष्किल नहीं।

गौतम : (हंस पड़ता है।)

मनीषा : यह हंसी ?

गौतम : मेरी है ?

मनीषा : आप हंस सकते हैं ?

गौतम : (चुप)

मनीषा : (तलवार रखती है।) अपनी 'उन' को जगाइए।

गौतम : उन्हें 'हाई ब्लडप्रेषर' है।

मनीषा : और आपको ?

गौतम : चुप बैठिए।

मनीषा : मैं 'आप' नहीं ...

अंदर जाने लगती है।

गौतम : कहां जा रही हैं ?

रोकता है।

मनीषा : जाने क्यों नहीं देते ?

गौतम : वह शक कर बैठेंगी।

मनीषा : आप पर ?

गौतम : आप पर।

मनीषा : कहते थे, वह शक नहीं करतीं।

गौतम : आप लगती ही ऐसी हैं। ऊपर से यह सब कुछ।

मनीषा : मैं जब यहां आई, आप अन्दर क्या कर रहे थे ?

गौतम : सोच रहा था।

मनीषा : अच्छा ! क्या ?

गौतम : (गम्भीर) वही, जो रोज सोचता हूँ– रोज वही काम वही फैक्ट्री ... वही घर ... वही पत्नी ...

मनीषा : बच्चे नहीं हैं ?

गौतम : हैं, दो, पढ़ते हैं, मसूरी में।

मनीषा : उनके बिना सूना–सूना नहीं लगता ?

गौतम : सूना–सूना लगता है मन में, क्या कमी है मुझे, पर जैसे कुछ है जिसका अभाव लगता है हर समय।

मनीषा : क्या है वह ?

गौतम : क्या ? यही तो नहीं मालूम, हां, मगर सोचना अच्छा लगता है।

मनीषा : मुझे घूमना अच्छा लगता है।

गौतम : डर नहीं लगता ?

मनीषा : डर क्यों ?

गौतम : इस तरह अकेले ?

मनीषा : मुझे विष्वास है।

गौतम : दुनिया पर ?

मनीषा : अपने पर।

गौतम : (चुप)

विराम

मनीषा : आपकी 'वो' क्या करती हैं ?

गौतम : घर में रहती हैं।

मनीषा : कहां तक पढ़ी हैं ?

गौतम : एम0 ए0, इतिहास।

मनीषा : और सारा दिन घर में रहती हैं ?... तभी तो बीमार हैं।

गौतम : कुछ पीजिएगा ?

मनीषा : पीते हैं... उई... उई... उई...

गौतम : डाक्टर ने कहा है, कभी–कभार शाम को थोड़ा...

मनीषा : डाक्टर ने कहा है (हंसती है।) खुद नहीं...

गौतम अन्दर जाता है।

मनीषा : क्यों इतना डरता है आदमी एक–दूसरे से ? क्यों हर समय उसे एक ऐसे खोल की जरूरत रहती है अपने को ढांकने के लिए जो सिर्फ दिखने में मजबूत लगता है ? क्यों नहीं वो अपना 'इन्हीबिषन्स' तोड़कर बाहर आ जाता है ? कारण क्याा हमारी सड़ी–गली सामाजिक व्यवस्था नहीं।

इसी बीच भीतर से गौतम ड्रिंक लिए आता है। मनीषा विचारमग्न होने के कारण उसे देख नहीं पाती।

गौतम : आईए।

मनीषा : 'नो, थैंक्स, नाट मी।'

गौतम : 'व्हाई, यू डोंट टेक ?'

मनीषा : लेती हूँ लेकिन आपके साथ पीने का मतलब हैं, आपकी नजरों में गिर जाना।

गौतम : 'आई एम ए माडर्न मैन।'

मनीषा : (ठहाका मारती है।)

गौतम : धीरे हंसिए...

मनीषा : हंसी से भी डर ?

गौतम : आदत नहीं। पसंद भी नहीं।

मनीषा : आपकी... वो बिल्कुल नहीं हंसती होंगी।

गौतम : आप उन्हें नहीं जानतीं, मैं जानता हूँ।

मनीषा : कितना ?

गौतम : कितना ?

मनीषा : नो, थैंक्स।

गौतम : प्लीज।

मनीषा : 'वो' पीती हैं ?

गौतम : नहीं... यह लीजिए।

मनीषा : मुझे किसी डाक्टर ने नहीं कहा।

हंसती है।

गौतम : सिर्फ साथ देने के लिए।

मनीषा : आप तो अकेले पीते हैं।

गौतम : लेकिन आज नहीं··· अच्छा चियर्स।

मनीषा : चियर्स।

गौतम : सोचने से मुझे हाइपरटेंषन हो जाता है, तभी डाक्टर ने···

मनीषा : आपको संगीत में··· ?

गौतम : हां, दिलचस्पी है··· कभी गाता भी था।

मनीषा : रियली··· ?

गौतम : (आवेष में) मैं हर वक्त झूठ बोलता हूॅ क्या ?

मनीषा : हंसती है।

गौतम : आप इतना बनती क्यों हैं ?

मनीषा : अच्छा , एक गाना सुना दीजिए।

विराम

मनीषा : सुनाइए न गाना।

गौतम : अब नहीं गाता।

मनीषा : क्यों ?

गौतम : आदत नहीं रही।

विराम

मनीषा : वाह ! क्या खूब ! आप किस तरह गाते–गाते उठ गए। किस तरह टहल–टहलकर··· गाते समय आपका चेहरा बिल्कुल बदल गया था। लगा, आपके भीतर से··· वही··· एक बिल्कुल दूसरा···

गौतम : लगता है मेरी जिन्दगी में अब कुछ नहीं रहा। आप कम से कम कल्पना के सहारे तो जी लेती हैं, मैं वह भी नहीं कर सकता।

मनीषा : मुझे अपना दोस्त बना लीजिए।

गौतम : दोस्त।

मनीषा : साथी···

गौतम : उससे कुछ नहीं होता। सोचा था, कविता जैसी लड़की से शादी कर हम कुछ··· आई मीन··· यू नो। सुना था मनपसंद शादी बहुत बड़ी चीज होती है (बाहर का दरवाजा बन्द करता हुआ) मगर पता नहीं क्यों शादी के बाद जैसे सब कुछ···

मनीषा : फि··· स्स··· ।

फोन की घंटी

गौतम : हेलो··· हां, कविता··· घर में ही है। थोड़ी तबियत खराब है··· क्या··· हूॅ··· ओ हां··· हूॅ··· हूॅ··

रख देता है।

गौतम : शहर में काफी वारदात हुई हैं–अब शान्त है ... लेकिन टेंषन अभी है।

मनीषा : टेंषन कम होने में समय तो लगता ही है।

गौतम : आपकी उंगलियां कितनी प्यारी हैं !

मनीषा : तो आप यहां से शुरू करते हैं ?

गौतम : (चुप)

मनीषा : विलम्बित लय में बड़ा ख्याल ... (नकल करती है) अ अ ... आ ... आ आ आ ... अ आ ... आ आ .. ..आ आ ...आ आ आ ... कित ... नी ... खू ... ब ... सूरत ... है।

गौतम : (चुपचाप पी रहा है।)

मनीषा : अरे ... आप इस तरह क्यों पीते हैं ? इत्मीनान से पीजिये।

गौतम : मैं सोचता हूँ ...

मनीषा : आप इतना डरते क्यों हैं ?

गौतम : निडर होने के लिए।

मनीषा : हो जाइए ना।

गौतम : कैसे ?

मनीषा : आपको कभी अपने–आप पे गुस्सा नहीं आता ?

गौतम : (चुप)

मनीषा : नफरत नहीं होती ?

गौतम : (पीता है।)

मनीषा : कि आप आदमी नहीं चूहे हैं।

गौतम : (सहसा) शहर में जो कुछ हो रहा है वह क्यों ? एक दबी हुई बात , जो सहसा फूट पड़ी है किसी एक बहाने से।

मनीषा : हर कायर आदमी को एक सहारा चाहिए। बहाना चाहिए, इसके पहले कि वो चूहे से शेर बन सके।

गौतम : यही सब, वह लोग कर रहे हैं जो निर्दोष बूढ़ों, बच्चों और औरतों को तंग कर रहे हैं, बसों का निषाना बना रहे हैं, क्रान्ति का बहाना लेकर दंगे–फसाद करते हैं। शान्ति भंग करते हैं, नियम तोड़ते हैं, जीवन की गति–लय को ...

मनीषा : रहने ... नहीं देते। उस गति, उस लय को, जिसकी हमें आदत हो गई है, विलम्बित लय ...

पीती है।

गौतम गिलास खाली करता है।

मनीषा : कम से कम आपके पीने की लय तो द्रुत है।

गौतम : (अपने गिलास में डालते हुए) आप बहुत स्लो हैं।

मनीषा : वैसे जो फास्ट हूँ।

विराम

गौतम : आपको लुंगी बहुत अच्छी लगती है।

मनीषा : (हंसती है) आप सीधे क्यों नहीं कहते ? मेरी उंगली, मेरी लुंगी, मेरा पैर ... ।कहीं कुछ तो कबूल कीजिए।

गौतम : (चुप है।)

मनीषा : हिम्मत नहीं। मुझमें भी न थी–बिल्कुल नहीं। तब मेरे पापा 'वाइस चान्सलर' थे। मैं यही सोलह साल की थी सीनियर केम्ब्रिज में ... । उस लड़के का नाम कमल था। वह न खेलता, न बात करता, बस एकटक मुझे निहारता रहता। एक दिन जब हम पिकनिक पर गए हुए थे तो अकेला पाकर उसने मुझे 'किस' कर लिया। मुझे बुरा नहीं लगा था फिर भी मैंने डांट दिया। प्रिन्सिपल से रिपोर्ट करने की धमकी दी। वह डर गया, गिड़गिड़ाने लगा, लेकिन मैं थी कि यह सब मुझे अच्छा लग रहा था। घर लौटकर उसे तेज बुखार चढ़ आया। बेहोषी में वह मेरा नाम पुकारता, बाद में उसे सेनीटोरियम ले जाया गया ....

सन्नाटा

मनीषा : फिर न जाने वह कहां चला गया।

गौतम : थोड़ी और ...

मनीषा : (गिलास लेकर) फिर एक और। ... टेनिस प्लेयर ... कालेज में। उसके साथ मुझे ऐसा लगता – जैसे मेरी ममी, जो मुझे जन्म देकर ही ... वह मुझे मिल गई। सच, उसीसे मैंने, मां की कल्पना की थी। अधिकार ... विष्वास ... सुरक्षा। वह बहुत सावधानी से कार चलाता। उसीने मुझे कार ड्राइविंग सिखाई। मैं कार चलाती। वह मेरे अंक में सिर रख कर ... । उसीने कहा था–षक्ति आत्मा की, सुन्दरता भावों की। साहस चरित्र का। धैर्य के सहने का।

सन्नाटा

मनीषा : मैं साथ में ही थी जब वह कार एक्सीडेंट हुआ।

एक सांस में पी जाती है।

गौतम : (चुपचाप पी रहा है।)

मनीषा : फिर ... एक रिसर्च स्कालर आया। उसने बिल्कुल नई दिषा दी मेरे विचारों को, एक सम्पूर्ण जीवन–दृष्टि। मुझे लगने लगा जैसे आज तक जिस तरह का जीवन हमने जिया है वह अर्थहीन था। हम खोखले सिद्धान्तों और गले–सड़ आदर्षो की बैसाखियों के सहारे चलते–चलते पंगु हो चुके हैं। हमारा समाज, राजनीति, दर्षन, सब कुछ आत्म–सुरक्षा की दीमक द्वज्ञरा खाया जा रहा है। हम गुलाम हो चुके हैं और इस सबसे छुटकारा पाने के लिए परिवर्तन आवष्यक है। लेकिन ... एक दिन वह गिरफ्तार कर लिया गया, नक्सलाइट होने के शक में। कुछ दिनों बाद सुना, वह पुलिस की गोली का निषाना बन गया, क्योंकि उसने जेल से भागने की कोषिष की थी। तब से मैं बराबर घूमती रहीं हूँ। यहां से वहां, वहां से वहां। बिना कहीं रूके, बिना टिके। कितने लोग एक के बार

एक–एक जीवन में आए, याद नहीं। कोषिष भी नहीं की याद रखने की। एक अपरिचित, फिर दूसरा अपरिचित। एक जाना–पहचाना लगने लगता है। 'नाऊ आई लाइक ओनली स्ट्रेंजर्स।' (रूक जाती है। पीती है।) 'एण्ड यू आर ए स्ट्रेंजर एट।'

गौतम : मुझे अपना दोस्त मान लीजिए।

गौतम के हाथ में अपना हाथ दे देती है।

मनीषा : मुझे लगता है, वही ढूंढ़ती रही हूँ।

गौतम : मुझपर विष्वास रखो।

मनीषा : (चुप है)

गौतम : कहो, विष्वास है ... इस दोस्ती के लिए ... चियर्स।

मनीषा : यह जो मेरा बाहरी रूप है न ... । मतलब ... यह जो है ...

गौतम : हां ...

मनीषा : (चुप)

गौतम : मेरी जिन्दगी बिल्कुल सपाट है–कभी कुछ नहीं हुआ। इस कदर आराम और सुरक्षा में जिन्दगी ... हां, 'लक्जरी' में भी, फिर भी आज तक का जोड़ कुछ नहीं। जैसे खुद अपने–आपसे अपरिचित हूँ।

मनीषा : सच बताइए, आपने मुझे जब पहली बार देखा, मेरे बारे में क्या सोचा ?

गौतम : मेरी आदत है, नेचर भी कह सकती हैं–देखते ही मैं आइडिया बना लेता हूँ और उसे बदलता नहीं, जरूरत नहीं महसूस होती।

विराम

मनीषा : मैं यहां कुछ दिन ... ?

गौतम : शौक से।

मनीषा : आपकी वाइफ ... ?

गौतम : वह मेरे ... खिलाफ नहीं जातीं। वड़ी समझदार हैं। और नेक।

मनीषा : यह जान लेने पर भी, कि हम दोनों ...?

गौतम : यह जानने की क्या जरूरत ?

मनीषा : जरूरी है।

गौतम : मैं समझता हूँ – बिना किसी के जाने ...

मनीषा : 'यू विल आलवेज बी ऐ बिजनेसमैन।'

गौतम की हंसी। मनीषा बढ़कर संगीत चला देती है।

मनीषा : गाना गाओ ... ओ मैन।

गौतम : 'वो' जग जाएंगी।

संगीत बन्द

मनीषाः अब उन्हें जगना चाहिए। उनसे फौरन मिलना चाहती हूँ ... मैं जगाती हूँ।

गौतम : नहीं प्लीज।

मनीषा : पर क्यों ?

गौतम : मैं जो चाहता हूँ ।

मनीषा सहसा देखती है, बहुत सारी मोमबत्तियां।

मनीषा : इतनी सारी रंग–बिरंगी मोमबत्तियां ?

गौतम : ओह, मैंने बताया नहीं, आज हमारी शादी की सालगिरह है।

मनीषा : बधाई।

गौतम : धन्यवाद।

मनीषा : नहीं, शुक्रिया।

दोनों की हंसी

मनीषा : फिर तो उन्हें अब जरूर जगाइए। दोनों सजिए–सजाइए ... जषन मनाइए ... गाइए ... नाचिए।

गौतम : इस करफ्यू में ?

मनीषा : घर में, इस कमरे में तो करफ्यू नहीं !

गौतम : (चुप है।)

मनीषा : क्यों ? चलिए ... उन्हें उठाइए ... नाचिए ... गाइए।

गौतम : छोड़ों। बड़ा बनावटी लगता है।

मनीषा : पूर जिन्दगी बनावटी नहीं ?

गौतम : सुख तो है।

मनीषा : कैसा सुख ?

गौतम : शरीर–सुख ।

मनीषा : कैसा शरीर ?

गौतम : यह।

मनीषा की कमर में हाथ डालकर उसे निहारता है।

गौतम : 'दिस बॉडी।'

मनीषा : मुझे थामे रहो। छोड़ना नहीं। इसी तरह सो जाना चाहती हूँ ... रेस्ट ... रेस्ट।

गौतम के हाथ में बिलकुल झूलकर आराम करने लगी है।

गौतम : मनीषा ...

धीरे–धीरे उसपर झुकता है।

मनीषा : (सहसा सावधान हो खड़ी हो जाती है।) तुम्हारी शादी की साल गिरह ... आओ ... ना ... नाचना नहीं आता ?

हंसती है।

मनीषा : (नाचने लगती है।) म्यूजिक चलाओ।

गौतम : सितार पर बालरूम डांस।

मनीषा : कहीं पर कुछ भी।... आओ, बढ़ों, मेरा हाथ पकड़ों। कदम बढ़ाओ। (पकड़ लेती है) इस तरह... मजबूती से थामो न। हां.. अब पैर बढ़ाओ... ऐसे... ऐसे... ऐसे... शाबाष...

गौतम : थोड़ी और ले लूँ।

ढालता है।

मनीषा : बस्स... बस्स... क्या कर रहे हो ?

बोतल छीन लेती है।

गौतम : थोड़ी–सी और।

मनीषा : लो... और ?

गौतम : बस।

मनीषा : चलो अब।

संगीत चला देती है। गौतम चुपचाप।

मनीषा अकेले नाच रही है–मंत्रमुग्ध।

न जाने किस लोक में खोई हुई। सहसा

गौतम बढ़कर मनीषा को पकड़ लेता है।

मनीषा : क्या देख रहो हो ?

गौतम : कितनी सुन्दर !

मनीषा : क्या ?

गौतम : (पकड़े हुए) तुम।

मनीषा : छोड़ो। हाथ टूट जाएगा।

गौतम : चाहता हूँ, यह टूट जाए। पर...

मनीषा : मेरा हाथ ?

गौतम : मेरे भीतर...

मनीषा : चलो मेरी आंख मूंद लो।

गौतम कुर्सी के पीछे से उसकी आंखे दोनों हाथ से मूंद लेता है।

मनीषा : इस अंधेरे में देख रही हूँ... वही कमल... वही टेनिस का खिलाड़ी... वही रिसर्च स्कालर... और न जाने कितने चेहरे।

गौतम उसके सिर को चूमता है।

मनीषा : डरते हो ?

गौतम हाथ चूमता है।

विराम

मनीषा : मुझे चाहते हो ?

गौतम : (चुपचाप हाथ चूमता जा रहा है।)

मनीषा : मुझे प्यार करो।

गौतम : अब तक कितने लोगों से ?

मनीषा : सबसे।

गौतम : मतलब ... ?

मनीषा : शरीर संबंध ... ?

गौतम : हां।

मनीषा : अगर कहूँ किसी से नहीं। विष्वास नहीं होता ?

गौतम : (सिर हिलाता है।)

विराम

मनीषा : अगर हमेषा मुम्हारे पास रहूँ ?

गौतम : रह पाओगी ?

मनीषा : शादीषुदा क्या दूसरी स्त्री से प्यार नहीं कर सकता !

गौतम : पत्नी से छिपकर।

मनीषा : उसकी जानकारी में क्यों नहीं ?

गौतम : ऐसा नहीं होता।

मनीषा : अपराध है !

गौतम : पता नहीं।

गौतम बढ़कर उसको पकड़ लेता है।

मनीषा : (छुड़ाकर) ऐसे क्यों करते हो !

गौतम : आदत।

मनीषा : तोड़ दो।

विराम

मनीषा तेजी से टेपरिकार्डर चला देती है। ऊंचा संगीत।

मनीषा : ओ हो ... हो हो ... हो हो।

ओ हो ... हो हो ... हो हो।

कई क्षणों तक चलता है।

गौतम : (घबड़ाकर) 'वह' जग जाएंगी।

संगीत बंद

मनीषा : जग जाएं।

गौतम : तुम्हें पता नहीं ?

मनीषा : चाहती हूँ तुम जग जाओ।

गौतम : तुम कुछ नहीं जानतीं।

गौतम ड्रिंक लेने लगता है। मनीषा बढ़ कर एक कैंडिल निकालती है। जलाती है। गौतम बढ़कर उसे फूंक मारकर बुझा देता है।

मनीषा : तुम्हारी आज साह–गिरह है।

फिर जलाती है। वह फिर बुझा देता है।

मनीषा : क्या करते तो ?

गौतम उसे पकड़ना चाहता है। उसका चेहरा देखकर मनीषा दूर हटने लगती है।

गौतम : डरती हो ?

सन्नाटा

मनीषा : 'गुड नाइट।'

गौतम : जा रही हो ?

मनीषा : हां।

गौतम : कहां ?

मनीषा : पता नहीं।

गौतम : क्यों ?

मनीषा : अब तुम अपरिचित नहीं रहे।

गौतम : जाओगी कैसे ?

मनीषा : क्यों ?

गौतम : दरवाजा बंद है।

मनीषा : खोल लूंगी।

गौतम : अब इतना आसान नहीं।

उसे कसकर पकड़ लेता है।

विराम

मनीषा : जानवर !

मनीषा : मत पकड़ो इस तरह।

छुड़ाकर अलग खड़ी होती है।

गौतम : क्यों ?

मनीषा : क्यों ?... कायर।

मनीषा दरवाजे की ओर बढ़ती है।

मनीषा : (भीतर का दरवाजा पीटती हुई) जागिए... जागिए...बाहर निकलिए...

गौतम : वह नहीं हैं।

मनीषा : क्या ?

गौतम : हां, यहां कोई नहीं। केवल मैं और तुम... तुम और मैं...

बढ़ता है।

मनीषा : तुम्हारे भीतर... ?

गौतम : डरती हो ?

मनीषा : नहीं... नहीं... नहीं।

बाहर भागना चाहती है। गौतम पीछे से पकड़ लेता है। संघर्ष।

मनीषा : कायर... बुजदिल।

गौतम : सारे कानून–कायदे तोड़ दो।

मनीषा : झूठे।

गौतम : कहीं पर कुछ भी....

मनीषा : (अवाक्)

गौतम : मुझे... तूने...

मनीषा : क्या ?

गौतम : इस तरह कमरे में आना... मेरी टाई खींचना, बटन खोलना, खेल–तमाषे, सारी हरकतें 'आई लव स्ट्रेन्जर्स।'

मनीषा : (चुप है।)

गौतम : मेरा कोई कसूर नहीं। तुम यहां पनाह लेने आई... फिर एक शरीफ लड़की की तरह... कायदे से।

मनीषा : (मूर्तिवत् निहार रही है।)

गौतम : जानबूझकर मुझे...

मनीषा : तुझे ?

गौतम : मेरा कोई कसूर नहीं।

मनीषा : (तलवार उठा लेती है। गौतम डर जाता है।) अब आगे मत जाना, मैं अपने को बचा सकती हूॅ। विष्वास हुआ ?

तलवार फेंककर निकल जाती है।

गौतम : कहां जाओगी ?

गौतम मूर्तिवत् खड़ा है।

गौतम : यह क्या किया मैंने।... यह क्या हुआ ?

सोफे पर गिरता है। ड्रिंक लेने लगता है। सोफे पर धीरे–धीरे लेट जाता है।

<u>दूसरा दृष्य</u>

संजय का कमरा। संजय कुछ पढ़ रहा है।

संजय : कौन ?... मैं। तुम आ गई। मैं डरता था, भय था मुझे, कहीं तुम आ न सको ? कैसी बात करते हो ?... पर यह क्या ? तुम्हारी आंखों में आंसू ? लड़की बहुत देर चुप रह जाती है – युवक कुछ नहीं समझ पा रहा है। लड़की आएगी तो कहां खड़ी होगी ?... युवक यहां बैठा इन्तजार कर रहा होगा। उसे सिगरेट पिलाना ठीक होगा ? नहीं, उसमें धैर्य है, और विष्वास भी। वह लड़की को अन्तर की गहराई से प्यार करता है। लड़की भी उसी तरह प्यार करती है। लड़की ने ही तो उससे कहा है– वह उसे लेकर यहां से चला जाए। और शादी करके लौटे।... ठीक। लड़की यहां आकर खड़ी होगी।... पर वह आएगी कैसे ? उसका प्रवेष किस तरह का होगा ?

बाहर से सहसा कविता का प्रवेष। उसे देखे बिना संजय पूरी स्थिति पर विचार करता है, और फिर अपना तथा लड़की का संवाद दुहराता है।

संजय : कौन ?

कविता : जी मैं।

संजय : (हड़बड़ा कर उठता है।) आप ?

कविता : जी क्षमा कीजिए, संजय जी, अचानक करफ्यू लग जाने के कारण घर वापस न लौट सकी।

संजय : आप मुझे जानती हैं ?

कविता : आप मुझसे परिचित नहीं, लेकिन मैं आपको जानती हूँ।

संजय : कैसे ?

कविता : आपको कई बार मंच पर देखा है–अलग–अलग रूपों में–असली रूप में पहली बार देख पा रही हूँ।

संजय : आइए, बैठिए, खड़ी क्यों हैं ?

कविता : क्या संयोग है ! इस करफ्यू के कारण आपसे भेंट हो गई। चाहा कितनी बार था कि आपसे मिलूं, आपकी प्रषंसा करूं लेकिन हो आज पाया है। और वह भी अकस्मात् । नीचे आपकी नेमप्लेट देखी तो, किसी अजनबी के घर बिना पूछे घुसने का संकोच त्याग, चली आई। आषा है, आप बुरा नहीं मानेंगे।

संजय : नहीं, नहीं, बुरा मानने की बात नहीं है। जितनी देर आप चाहें रूकें। हां, एक बात बता दूँ–मैं यहां अकेला हूँ, यानी कोई स्त्री नहीं है घर में।

कविता : कैसी बात करते हैं आप ! आप पर अविष्वास तो मैं स्वप्न में भी नहीं कर सकती, अपने पर शायद उतना न हो, आप पर है। आपके नाटक देख–देखकर एक आदरभाव पैदा हो गया है मन में–आप–सा कलाकार–अभिनेता मैंने किसी को नहीं पाया।

संजय : छोड़िए यह तारीफ। लगता है थियेटर की शौकीन हैं आप।

कविता : केवल देखने भर की। स्कूल से कालेज तक करने का भी शौक रहा–अक्सर ड्रामों मे, लेकिन अब केवल देखना भर ही बच रहा है।

संजय : आराम से बैठिए, मैं तब तक काफी लाता हूँ।

कविता : पहले एक फोन करना चाहूँगी–अपने पति को बता दूं, मैं कहां हूँ, वरना वह मेरे लिए परेषान होंगे।

संजय : आप फोन कीजिए–मैं काफी लाता हूँ।

जाता है।

कविता टेलीफोन करती है। शायद नम्बर नहीं मिलता–दूसरा नम्बर मिलाती है।

कविता : हेलो, मैं मिसेज गौतम बोल रही हूँ। घर से नहीं, कहीं और से–एक मित्र के यहां से–जरा घर गौतम साहब को फोन कीजिए और बता दीजिए कि मैं 'सेफ' हूँ। फिक्र न करें–मुझे नम्बर नहीं मिल पा रहा। हां, थोड़ी देर बाद फिर करके पूछ लूंगी।

रख देती है।

संजय काफी की ट्रे लेकर आता है।

संजय : मिल गया फोन ?

कविता : जी, घर का फोन 'एन्गेज्ड' आ रहा है, शायद खराब है, फैक्ट्री कर दिया है।

संजय : (काफी बनाकर देता हुआ) चीनी कितनी ?

कविता : आपने बेकार परेषानी उठायी। मैं तो इस समय काफी नहीं पीती।

संजय : परेषानी कैसी ? आपकी बदौलत मुझे भी नसीब हो गई।

कविता : बहुत दिनों से नहीं पी। अब तो यह भी याद नहीं, आखिरी बार शाम को काफी कब पी थी–सो आदत नहीं रही।

संजय : आप पीकर देखिए तो ! चीनी ?

कविता : अच्छा, तो फिर मैं बनाती हूँ।

संजय : मेरे हाथ की बनी पीकर देखिए। लीजिए।

कविता : वैसे यह काम औरतों का है।

संजय : लगता है, आप हर चीज निष्चित करके चलती हैं।

कविता : निष्चित किए बिना चलता जो नहीं। आप भी तो नाटक में हर बात निष्चित करके चलते हैं।

संजय : पीजिए, ठंडी हो रही है।

कविता : जिन्दगी भी तो नाटक है। (सहसा) ऐसा क्यों नहीं नाटक होता, ठीक जैसे हमारी जिन्दगी है। जहां कोई चीज पहले से निष्चित नहीं है। मतलब, हमने तो निष्चित कर रखा है, मगर सहसा, अचानक कुछ ऐसा हो जाता है कि विष्वास नहीं किया जा सकता ... जैसे कि आज मेरा यहां आ जाना।

संजय : पीजिए ...

कविता : हाय, कितनी उम्दा। क्या डाल दी आपने ? एक चम्मच से ज्यादा कभी नहीं पी थी .... विष्वास कीजिए। और आज आपने पूरे ढाई चम्मच।

संजय : बहुत मीठी हो गई !

कविता : उम्दा। वाह ... ।

संजय : शुक्रिया।

कविता : लगता है, आप हरदम अभिनय करते हैं। .... आपके बोलने–चालने में एक ... एक ... मतलब ... एक कला होती है।

संजय : आप 'बनावट' कहना चाह रही थीं।

कविता हंसती है।

कविता : जी, बिलकुल।

संजय : तो कहिए ना, कहिए।

कविता : लगता है, आप हर वक्त दूसरों को प्रभावित करना चाहते हैं।

संजय : पहली बार, ऐसा किसी ने कहा है।

कविता : क्षमा करें। इस तरह बोलने की मेरी आदत नहीं। लेकिन आज ...

संजय : थोड़ी गर्म और लीजिए।

कविता : ना–ना, ना–ना, मैं सिर्फ एक कप।

संजय : आपने चारों ओर जैसे ब्रेक लगा रखी है।

दोनों पी रहे हैं। टेलीफोन की घंटी बजती है।

संजय : हेलो संजय हियर। हेलो दीपक, हां भई, नहीं भई, मैं नहीं आ सकूंगा पार्टी में। नाटक की तारीख नजदीक आ रही है न। ... नहीं भई, मेरे पास समय नहीं है ... सॉरी, फिर कभी सही ... थैंक यू।

रख देता है।

कविता : लोग आपको पार्टियों पर बुलाते हैं–आप जाते क्यों नहीं ?

संजय : वक्त कहां है बेकार की बातों के लिए !

कविता : बेकार बातें ?

संजय : और क्या ? एक अजीब जमघट होता है इन पार्टियों में। लेखक, निर्देषक, अभिनेता, आलोचक सभी होते हैं। बहाना नाटक व रंगमंच की समस्याओं पर विचारों का आदान–प्रदान। मकसद शराब पीना, 'रिकगनीषन' पाने की

होड़ में दूसरों की उखाड–पछाड़ करना, और अपना एक विषेष स्थान बना लेने की कोषिष करना। पहले जाया करता था मैं भी, लेकिन अब वहषत–सी होने लगी है यह सब देखकर। ठीक काम करने की बजाय अपनी तूती बजाना ही कुछ लोगों का ध्येय बन चुका है। छोटे–छोटे क्लिक, म्यूचुअल एप्रिसियेषन क्लब्स बनाकर चलते हैं यह लोग अपने–अपने छोटे–छोटे स्वार्थो के लिए।

काफी पीता है।

विराम

संजय : आप चुप हो गई ?

कविता : समझ नहीं आता क्या बात करूं ?

संजय : मेरी तारीफ करने के अलावा, कुछ भी।

कविता : मुझे बोलने में काफी दिक्कत होती है। बात करने की आदत नहीं रही।

संजय : ऐसा लगा तो नहीं।

कविता : आज बहुत दिनों बाद मैंने एक साथ इतनी बातें की हैं।

संजय : वरना रोज क्या करती हैं ?

कविता : इस समय अक्सर एक न एक पार्टी होती है। अपने को रोज बढ़िया से बढ़िया कपड़ों में लपेटकर वहां ले जाना होता है। रोज वही बातें, वही लोग, वही शराब के दौर। बीच में कभी–कभी थियेटर – आपका अभिनय–सिर्फ रूटीन तोड़ने के लिए। वहां भी देखना, सुनना ही–बोलना ना के बराबर। फिर क्या बात करूं ?

संजय : फिर भी कुछ तो।

कविता : आज मौसम अच्छा है।

संजय : किसने कह दिया।

हंसता है। कविता चुपके से उठकर टेलीफोन मिलाती है।

कविता : हेलो ! मिसेज गौतम। क्या ... उन्होंने कहा मैं घर पर हूँ। थोड़ी तबीयत खराब है ... आपने कहा नहीं, मैंने टेलीफोन किया था ... क्या बोले ? हूँ–हां कर रहे थे। अच्छा, ठीक है! थैंक यू।

फिर नम्बर मिलाती है, शायद फिर 'एन्गेज्ड' है।

कविता : घर का टेलीफोन कटा है शायद ...

इस बीच संजय फिर नाटक पढ़ने लगा है।

कविता : क्या पढ़ रहे हैं ?

संजय : नाटक ...

कविता : कब कर रहे हैं ?

संजय : जल्दी ही।

विराम

कविता : जिस समय मैं आई, उस समय आप ...

संजय : अकेला रिहर्सल कर रहा था क्योंकि और लोग आ नहीं सके। समय इतना कम रहा गया है और आज रिहर्सल हो नहीं पाई।

कविता : आप हमेषा अभिनेता की तरह ही बोलते हैं।

संजय : आप हमेषा अपनी तरह ही बोलती हैं। पर मेरी पत्नी को चिढ़ थी मेरी आवाज से।

कविता : और आपको किस बात से चिढ़ थी ?

संजय : चापलूसी, झूठ, हिपोक्रेसी से। आदमी जो महसूस करे वह कहने का साहस भी तो करे।

कविता : कहना खतरनाक हो तो ?

संजय : पति–पत्नी सुख से रहें। फलें–फूलें।

दोनों हंसते हैं।

कविता : तो आज की रिहर्सल ?

संजय : क्या करूं ?

कविता : उस लड़की का पार्ट यदि मैं पढ़ती जाऊं ?

संजय : सच !

कविता : हां।

संजय : अच्छा, फिर काफी खत्म कीजिए।

कविता : थोड़ी कहानी बताइए ...

संजय : दरअसल यह प्रेम–कहानी है। युवक और लड़की में सच्चा प्यार है।

कविता : वह तो सच्चा होगा ही ... कम से कम नाटक में।

संजय देखता रहा जाता है।

संजय : सीन है–लड़का अपने कमरे में पढ़ रहा है और लड़की आती है।

कविता : लड़की क्यों आती है ? वक्त क्या है ?

संजय : शाम का वक्त ... लड़की मॉ–बाप से छिपकर मिलने आई है।

कविता : लड़की की उमर क्या है ? वह अपने मां–बाप से ही छिपकर आई है, या ...

संजय : या ... ?

कविता : हां, या ? पढ़ते हैं–पता चल जाएगा।

संजय : आप खुद सीन पढ़ लीजिए।

इस बीच संजय मंच की स्थिति तैयार करता है।

संजय : युवक यहां बैठा पढ़ रहा है–आप उधर से आती हैं।

कविता : मैं ?

संजय : आप नहीं, वह लड़की ... चरित्र।

कविता : एक बात बताइए–युवक उसके आने की प्रतीक्षा कर रहा था ?

संजय : था...

हंसी।

कविता :... मैं आती हूँ।

संजय पढ़ रहा है। कविता बाहर से आती है।

लड़की : क्या कर रहे हो ?

युवक : ओह ! तुम। कैसे आई ? मतलब, बस से या...

लड़की : बताओ कैसे आई ?

युवक : टैक्सी से।

लड़की : उहूँ।

युवक : पैदल...

लड़की : गलत ।

युवक : बस, आ गई ?

लड़की : दौड़ती हुई।

संजय : यहां दोनों की हंसी है।

कविता : पहले कौन हंसेगा ?

संजय : साथ–साथ... । चलिए...

दोनों हंसते हैं।

कविता : आपकी हंसी अच्छी नहीं आई।... फिर से।

दोनों हंसते हैं।

लड़की : जैसे शाम घिरने लगती है, मैं तुमसे अलग नहीं रह सकती।

युवक : मैं भी अपने को काम में लगा लेता हूँ। बैठो... या कहीं घूम आएं।

लड़की : नहीं यहीं तुम्हारे साथ।

विराम

कविता : ऐसा वह क्यों कहती है !

संजय : आप बताइए।

कविता : लड़की चाहती है, वह युवक के साथ बाहर निकले, पर डरती है। इसलिए मजबूरन करमे में ही।

संजय : इसके बाद लड़की युवक के गले में हाथ डाल देती है। यह हो गया... युवक उदास उसकी ओर निहारने लगता है–आगे पढ़िए।

कविता : वाह। आगे कैसे ? बिना 'ऐक्षन' के संवाद कैसे ? लड़के के बोलने के ढंग में फर्क आना चाहिए।

संजय : आप तो सचमुच...

कविता : चलिए, मैं करती हूँ।... यह लड़की नाम ठीक नहीं रहेगा, इसे युवती कहिए। आप देख क्या रहे हैं ?

संजय : बताइए।

विराम

युवती : जैसे शाम घिरने लगती है, मैं तुमसे अलग नहीं रह सकती।

युवक : मैं भी अपने को काम में लगा लेता हूँ। बैठो, या कहीं घूम आएं।

युवती : नहीं ... यहीं तुम्हारे साथ।

युवक के गले में हाथ डाल देती है।

युवक उसकी ओर निहारने लगता है।

क्विता : आप तो गंभीरता से ...

संजय : अब ?

कविता : गुस्से से देख रहे हैं । इस तरह देखिए ... उदासी से।

करके दिखाती है। संजय की हंसी।

कविता : चलिए, फिर से।

कविता अपना संवाद बोलकर हाथ

डालती है। संजय उदासी से देखता है।

क्विता : ठीक।

संजय : युवक उदासी से क्यों देखता है ?

कविता : आप जानिए ... आपने पूरा नाटक ...

संजय : आपकी समझ मुझसे ज्यादा है।

कविता : बात यह है – युवक मध्यवर्ग का हिन्दू है–डर रहा है साला।

दोनों हंसते हैं।

कविता : 'आई एम सॉरी।' सोचता है, किस चक्कर में फंस रहा हूँ।

संजय : बिलकुल सही।

कविता : युवती ने कहीं जरूर आत्महत्या की बात भी की होगी।

संजय : 'इग्जैक्टली' ... आपने यह नाटक पढ़ा है ?

कविता : ऐसे ही होता है।

संजय : 'क्लाइमेक्स' से पहले यही सीन है। देखिए ... पढ़िए, तब तक मैं आपके लिए और काफी ...

कविता पढ़ रही है। संजय काफी बना रहा है।

कविता : वाह ! वाह !

हंसना

संजय : ऐसा होता नहीं क्या ?

कविता : होता तो ऐसे ही है ... मगर ऐसा होना नहीं चाहिए।

पढ़ने में डूब जाती है।

संजय : काफी पीती चलिए ...

संजय के हाथ से कप उठाकर पीती चलती है, और पढ़ने में खो गई है। प्लेट संजय लिए खड़ा है।

कविता : अरे ... आप इस तरह। मैंने फिर काफी पी ली ?

संजय : आपने नहीं, उस युवती ने।

कविता : क्या ?

संजय : हां।

कविता : जी नहीं।

संजय : इजाजत हो तो मैं भी काफी पी लूँ ?

कविता पढ़ रही है।

कविता : अन्त क्या होता है ?

संजय : अन्द बाद में।

कविता : जो भी हो, जीवन और नाटक में फर्क होना ही चाहिए।

संजय : अभी आपने कहा, ऐसा नहीं होना चाहिए।

कविता : हां, मैंने ?

संजय : हां।

सन्नाटा

संजय : अच्छा आप सिर्फ पढ़ती जाइए, युवती का संवाद। मैं अपना अभ्यास करता चलूँ।.. यह दृष्य।

कविता : चलिए ...

विराम

कविता : युवती मुस्कराकर ...

संजय : आप मुस्कराइए नहीं, 'डाइलॉग' बोलिए। चलिए ...

कविता : कम से कम यहां तो मुस्कराने दीजिए।

संजय : अच्छा, काफी खत्म कर लीजिए।

कविता : यहां बानवटी मुसकान होनी चाहिए–इस तरह।

संजय : प्लीज आगे पढ़िए।

कविता : और 'ऐक्षन' ?

संजय : यह भी पढ़ दीजिए।

कविता : नाटक को पढ़ा–पढ़ाकर ही तो सत्यानाष किय है। अच्छा बोलिए।

युवती : (मुस्कराकर) मेरी ओर देखो। आप देखने क्यों लगे ?

संजय : 'सॉरी' ... पढ़िए।

युवती : (मुस्कराकर) मेरी ओर देखो।

युवक : चुप है।

कविता : तो आप चुप रहिए न।

युवती : मेरी ओर देखो ... नहीं देखोगे ? अच्छा, मेरी बात सुनो ...

संजय : युवक अब भी चुप है।

कविता : ओ हो ... तो आप चुप रहिए न।

युवती : मेरी ओर देखो ... नहीं देखोगे ? अच्छा मेरी बात सुनो। आज फैसला करके आई हूँ ... तुमसे ही ब्याह करूँगी।

युवक : ब्याह ?

युवती : मैंने तय कर लिया है।

युवक : इसका मतलब समझती हो ?

युवती : बिलकुल। ... मुझे किसी की परवाह नहीं।

युवक : अपनी भी नहीं ?

युवती : मेरा सर्वस्व तुम्हारे हाथों में है। कुछ भी हो जाए।

युवक : मैं तुम्हारे सामने कुछ भी तो नहीं। तुम इतने बड़े घर की इकलौती लड़की ... मैं एक मामूली ...

युवती : सब कुछ सोच–विचार कर ही तुम्हें वरण किया है।

युवक : भावुक मत बनो ! तुम्हारी शादी जहां पक्की हो रही है ...

युवती : इसका कोई और सौदा नहीं कर सकता।

युवक : सुनो तो ... मेरी बात सुनो ... मेरी तरफ देखो ...

क्विता संजय का सिर दोनों हाथों से पकड़कर उसे निहारने लगती है।

संजय : देखिए, आप बिलकुल उस चरित्र में डूब गई हैं।

कविता : चापलूसी बन्द।

संजय : नहीं, सच !

कविता : रिहर्सल।

संजय : यह 'रोल' आप ही क्यों नहीं कर लेतीं ?

कविता : मैं ?

संजय : जो अभिनेत्री मेरे संग युवती की भूमिका कर रही है ... आज करीब एक महीना हो गया रिहर्सल करते, उसमें वह बात अब तक पैदा नहीं हुई जो आपमें एकाएक ... मुझे लगता है, अपनी जिन्दगी में पहली बार ...

कविता : आप लोग बड़े भावुक होते हैं।

संजयः यह 'रोल' कर लीजिए न।

कविता : वाह।

संजय : आपके पति से कह लूंगा, वह सब मेरी जिम्मेदारी।

कविता : अपनी जिम्मेदारी किसी को नहीं देती।

संजय : तो कर लीजिए न ... प्लीज।

कविता : प्लीज।

संजय : आज तक किसी की इतनी खुषामद नहीं की—मेरे पास अभिनेत्रियों की लाइन लगी रहती है।

कविता : इतनी गलतफहमी !

संजय : 'रियली' ।...

कविता : पता नहीं।

संजय : (चूप रह जाता है।)

कविता : घूरते क्यों हैं ?

संजय : और काफी पीजिए।

कविता : क्या बजा है ?

संजय : साढ़े आठ।

कविता : 'केपस्यूल' का समय।

संजय : 'केपस्यूल' ?

कविता : रोज साढ़े आठ बजे एक 'केपस्यूल' लेती हूँ... दूसती ग्यारह बजकर चालीस पर।

संजय : डाक्टर को क्यों नहीं दिखातीं ?

कविता : (टिकिया लेती है) अपनी जिम्मेदारी किसी को नहीं देती।

संजय : मजाक करती हैं ?

कविता : आके रिहर्सल नहीं करनी ?

संजय : आपकी तबीयत।

कविता : ऐसा कुछ नहीं, चलिए।

संजय : आप सिर्फ पढ़िए, अभिनय मत कीजिए।

कविता : क्यों ?

संजय : आपको...

कविता : तर्क मत कीजिए...

विराम

कविता : चलिए, रिहर्सल कीजिए।

संजय : पहले काफी।

कविता : जी नहीं।... चलिए, शुरू करती हूँ।

संजय : कहां से ?

कविता : वहीं से – जहां से छोड़ा है।

कविता संजय का सिर दोनों हाथों से पकड़ उसे निहारती है।

युवती : मेरी आंखों में देखो।

युवक : कविता।

कविता : कविता ?... उस युवती का नाम...

संजय : 'सॉरी... वेरी सॉरी।'

युवक : तुम।

युवती : तुम्हारे बिना मेरा कोई अस्तित्व नहीं।

युवक : अब भी सोच लो।

युवती : बात खत्म हो गई।

युवक : मगर इस तरह शादी कर लड़कियां पछताती हैं।

युवती : उस तरह भी शादी कर लड़कियां दिन–रात पति के घर...

युवक : उन्हें इज्जत तो मिलती है।

युवती : वह इज्जत नहीं चाहिए।

युवक : यह कहना आसान है।

युवती : बस... बस।

कविता : (सहसा) नहीं।

विराम

युवक : मां–बाप की इच्छा से शादी करना और खुद आजाद मन से शादी करना, दोनों बिलकुल... बिलकुल.. अलग–अलग चीजें हैं। पहले का मतलब है, आराम...इज्जत....षान्ति, दूसरे का मतलब है संघर्ष, चुनौती । तुम सोचती हो कि तुम आजाद हो... मगर तुम्हारे भीतर पूरा का पूरा समाज बैठा हुआ है... मां–बाप, भाई–बहन, नाते–रिष्तेदार, सारा मुहल्ला पूरी परंपरा। तुम इनमें से अपने जितने लोगों को खुष रखोगी, उतनी ही तुम्हारी खुषी है।

युवती : तुम कब की, किसकी बात कर रहे हो ?

युवक : बिलकुल इसी वक्त... इसी क्षण की बात।

युवती : मैं तुम्हारे साथ हर संघर्ष, हर चुनौती लेने को तैयार हूॅ।

युवक : इतना आसान नहीं।

युवती : मुझे नहीं जानते।

युवक : जानता हूॅ–हर लड़की की तरह तुम भी...

युवती : चुप रहो।

युवक : सुनो।

युवती : कविता मर गई।

संजय चुप देखने लगता है।

कविता : क्यों ?

संजय : आपने कहा–'कविता मर गई।'

कविता : अच्छा ?

संजय : सच ...

कविता : वाह ! युवती आत्महत्या के लिए कहती है ... और युवक शादी के लिए तैयार हो जाता है। वाह, खुदकषी की बात जैसे दहेज थी।

ठहाका लगाकर हंसती है।

संजय : कविता जी, यह नाटक है।

कविता : कितना बचकाना लगता है। ...

संजय : सुनिए, मैं आपके लिए कुछ खाना तैयार करता हूँ, तक तब तक आप ... यह आखिरी सीन ...

कविता : जी नहीं, मुझे कतई भूख नहीं। हम लोग 'डिनर' लेट लेते हैं। ... आप खुद खाना बना लेते हैं ?

संजय : आपके लिए 'टोस्ट' और 'आमलेट' बना लाता हूँ।

संजय भीतर चला जाता है। कविता पढ़ने लगती है, और थोड़ी देर बाद फोन करती है। निराष रख देती है। फिर पढ़ने लगती है।

कविता : (सहसा जोर–जोर से पढ़ती है) तुम आ गई ... मैं डरता था, तुम कहीं ... मतलब मैं डर रहा था, मैं इतना भाग्यषाली नहीं। तुम इस तरह चुप क्यों ?

कई बार दुहराती है और एक क्षण पर आकर मूर्तिवत् चुप। संभलकर सोफे पर बैठ जाती है। कुछ ही क्षणों बाद भीतर से प्लेट में केवल टोस्ट तथा कुछ और लिए संजय आता है।

संजय : अंडा सड़ा निकला ...। अचार के साथ कभी टोस्ट खाया है ? पढ़ लिया ? आप इतनी 'सीरियस' क्यों हैं ?

कविता : कभी आपने सड़े अंडे का आमलेट खाया है ?

संजय : सड़े अंड़े का ?

कविता : यह अचार क्या होता है ?

संजय : अचार ...। ... आम का।

कविता : आम क्या होता है ?

संजय : देखिए, ज्यादा उल्लू मत बनाइए।

कविता : टोस्ट बढ़िया है।

संजय : और अचार ?

कविता : वाह ! मजा आ गया !

दोनों खा रहे हैं।

कविता : मुझे यह नहीं पता था, इस समय भी खा सकती हूँ।

संजय : आखिरी सीन पढ़ लिया ?

कविता : (चुप है।)

संजय : (अभिनय के एंग से) आखिरी ... सीन ... पढ़ लिया ?

कविता : बहुत ... बहुत पहले।

संजय : कैसा लगा ?

कविता : (हंसती है।)

संजय : ऐसा नहीं होता ?

कविता : होता तो ऐसा ही ... पर इसका कोई असर नहीं रह जाता। आगे वही एक अहसास घर कर जाता है–यहां हर चीज मर जाती है। उसी डर से लड़ने के लिए शादी ... बच्चे ... मकान, घर–गृहस्थी और ... और ...

संजय : कभी भागी हैं ?

कविता : सिर्फ एक बार ...

संजय : पुलिस ने गिरफ्तार किया ?

कविता : आत्मसमर्पण ...

संजय : पुलिस को ?

कविता : चलिए, रिहर्सल कीजिए।

संजय : तबीयत ?

कविता : आदत।

विराम। रिहर्सल की तैयारी।

संजय : मैं आज इसी सीन की शुरूआत के बारे में सोच रहा था। युवती कैसे आएगी ?

कविता : अब वह युवती नहीं, कोई नाम।

संजय : एक ही बात।

कविता : जी नहीं, नाम, गुण को खत्म कर देता है ... और उस नाम से अगर कहीं ...

संजय : आप कभी पूरी बात नहीं करतीं।

कविता : भाषा का दुरूपयोग नहीं करना चाहती।

संजय : मतलब, नाटककार करते हैं ?

कविता : मतलब आप निकालिए।

विराम

संजय : अच्छा, युवती कैसे आएगी ?

कविता : बड़ा आसान है ... बिलकुल सहज ढंग से।

संजय : वह सहज कैसे होगी ?

कविता : स्त्री के सहज–असहज में फर्क कर पाना मुष्किल है।

संजय : कमाल है !

कविता : चलिए, बैठिए ... देखिए वह आती है।

संजय बैठा इन्तजार करता है। युवती आती है।

युवक : कौन ?

युवती : मैं।

युवक : तुम आ गई ? मैं डरता था, भय था मुझे, कहीं तुम आ न सको।

युवती : कैसी बात करते हो ?

युवक : पर यह क्या ! तुम्हारी आंखों में आंसू !

छोनों चुप रह जाते हैं। एकाएक कविता को हंसी आ जाती है।

संजय : युवती रो रही है, और आप हंसती हैं !

कविता : एक सहज है, दूसरा असहज।

संजय : जो सहज है, वही कीजिए।

कविता : कौन कर सकता है ?

संजय : प्लीज कीजिए।

कविता : कर दूं ? लीजिए।

संजय : अरे, एकाएक आंसू !

दोनों चुप हैं। कविता की ऑखों में आंसू।

युवक : तुम्हारा सामान ? ... अच्छा है ,सामान नहीं। ... यह देखो हमारे दो टिकट। तूफान मेल से चलना है ..
.

युवती : तुम ग्रेट हो।

युवक : इसमें क्या ? जब फैसला कर लिया तो कर लिया।

युवती : तुम्हें कभी नहीं भूल पाऊंगी।

युवक : जल्दी करो, वक्त नहीं है।

युवती : तुम जैसा महान् पुरूष ।

युवक : टैक्सी वाले को वक्त दिया है .. बस, दस मिनट में टैक्सी बाहर दरवाजे पर खड़ी होगी। पानी पिओगी
?

युवती : तुम पी लो।

युवक : मेरी प्यास तुम हो।

युवती : मैं तुम्हें कभी नहीं भूल पाऊंगी।

युवक : मेरा जन्म तुम्हारे ही लिए हुआ था।

युवती : बैठो।

युवक : अब बैठने का वक्त नहीं है।

युवती : हमें कोई अलग नहीं कर सकता ... हम एक–दूसरे को ...

युवक : बात करने का वक्त नहीं है। इमें अपने सफर के बारे में सोचना है ... । हम यहां से सीधे कलकत्ता जाएंगे ... वहां से जगन्नाथपुरी ... वहीं शादी करेंगे ... फिर कोणार्क, और दार्जिलिंग में सुहागरात ...

युवती : मेरे देवता !

स्हसा कविता रूक जाती है।

कविता : 'मेरे देवता' ... साली झूठी।

संजय : और अब हीरो साहब।

कविता : लेकिन युवती ने मेरे देवता क्यों कहा ? स्वामी कहती ... राजा कहती ... बालम कह सकती थी।

संजय : पता नहीं।

कविता : वैसे देवता भी चलेगा।

संजय : चलेगा ?

कविता : हां, चलेगा।

युवती : मेरे देवता।

संजय : अब मुझे हंसी आ रही है। आपने 'मेरे देवता' ऐसे कहा, जैसे सब्जी काट रही हों।

युवती : मेरे देवता।

संजयः रूकिए तो ... पहले मुझे कहने दीजिए।

युवक 'बात करने का वक्त ...' संवाद दुहराताह है।

युवती : मेरे देवता।

युवक : घर वालो को बता कर आई हो या ... ?

युवती : बता कर

युवक : 'गुड'। उन्होंने क्या कहा ?

युवती : कुछ नहीं, बहुत खुष हुए।

युवक : अच्छा !

युवती : तुम महान हो। मैंने तुम्हारी सलाह मान ली।

युवक : क्या ?

युवती : लड़की को मां–बाप की इच्छा से ही शादी करनी चाहिए।

युवक : ओह !

युवती : तुमने ही कहा था, अपने जितने लोगों को खुष रखोगी, उतनी ही तुम्हारी खुषी है।

युवक : क्या ?

युवती : लड़की किसी को नाराज नहीं कर सकती।

युवक : क्या ?

युवती : तुमने मुझे बचा लिया–लड़की को शादी वहीं करनी चाहिए, जहां उसके मां–बाप ..

युवक : यह कब कहा था ?

युवती : पिता की तय की हुई यह शादी मंजूर कर ली।

युवक : क्या ? .... यह क्या किय तूने ?

युवती : तुम्हारी बात समझ कर मान ली।

युवक : नहीं, तू इस कदर मुझे बर्बाद नहीं कर सकती। मेरे संग जाना ही होगा।

युवती : कहीं जाने की अब क्या जरूरत ?

युवक : तूने ही सब चाहा था।

युवती : सुनो तो .... सुनो।

युवक : मैंने प्यार नहीं करना चाहा था, तुमने मुझे मोहा। मैं शादी नहीं करना चाहता था, तुमने मुझे उत्साहित कर तैयार किया। लेकर भागना नहीं चाहता था, पर तूने विवष किया।

युवती : बिगड़ा क्या है।

युवक : बिगड़ा क्या है ?

युवती : उल्टे बन गया–षादी करके जीवन–भर तुमसे प्यार करूंगी।

युवक : तू पागल तो नहीं हो गई ?

युवती : हां, हूॅ।

युवक : यह नहीं हो सकता।

युवती : क्या ?

युवक : मैं तुझे यह खुदकुषी नहीं करने दूंगा।

युवती : कैसी खुदकुषी ?

युवक : टैक्सी आ गई .... चलो .... चलो ....

युवती : भावुक मत बनो। समझदारी से काम लो ....

युवक : समझदारी ....

हथेलियों में मुंह छिपाकर रो पड़ता है।

युवती बाहर आती है।

युवती : चली गई टैक्सी .. । यह क्या बचपना है ? मुझे देखो .... मैं तुम्हें छोड़ कहीं चली तो नहीं गई ? तुम्हारी हूॅ। सदा रहूॅगी। तुम जब चाहना ...

युवक : चुप रहो।

युवती : नाराज मत हो। बड़ी समझदारी की है। देखना, इसका मजा बाद में आएगा ...

युवक : चली जाओ यहां से।

कविता : ऐसे नहीं–उठो, मैं कहती हूँ–'चली जाओ यहां से।'

संजय : (मंत्रमुग्ध) यह कैसे कहा ? यह आवाज !

कविता : कालेज के दिनों में ड्रामे किए हैं।

संजय : मैंने भी किए हैं मेरी जिन्दगी यही है मगर मैं इस तरह नहीं बोल सकता।

कविता : आदाबर्ज। ... चलिए, बोलिए, नखरे तम कीजिए।

संजय : आपके सामने नहीं कह पाऊंगा।

विराम

युवती : कहां जाऊं ? तुमसे अलग नहीं हो सकती ... जी चाहे मुझे जान से मार दो। उठाओ हाथ ... घोंट दो मेरा गला ...

युवक जाने लगता है। युवती पकड़ लेती है।

युवती : कहां जाते हो ? यह नहीं हो सकता।

युवक : छोड़ दो मुझे।

युवती : कत्ल कर दो ... छोड़ नहीं सकती।

युवक : बेषर्म ... झूठी ... बेईमान।

युवक बढ़कर अपनी अटैची और बैग उठाता है। युवती बढ़कर छीनती है।

युवती : यह नहीं हो सकता।

युवक : अब मैं यहां नहीं रह सकता।

युवती : जाना हम दोनों को था।

युवक : जाना अकेले ही होता है ... । मैं धोखे मे था।

युवती : मैं अपने प्यार की कसम खाकर कहती हूँ–मैंने धोखा नहीं दिया।

युवक : कम से कम उसकी कसम मत खाओ ...

युवती : अच्छा, अपने सोहाग की कसम।

युवक : छी ... छी ... छी ! तू जानवर हो गई।

युवती : देखो ... देखो न ...

पास आती हुई अपने रूप को दिखाने की कोषिष करती है।

युवती : देखो ... मैं तुम्हारी हूँ। देखो ... छुओ मुझे। इधर देखो।

युवक दूसरी तरफ मुंह फेर लेता है।

युवती बैग खोलती है।

युवती : हमने प्यार किया है।

युवक : हमने क्यों किया प्यार ?

युवती : किया ...

युवक : क्यों ? किसलिए ?

युवती : करना था। ...

युवक : करना था ? एक अदद प्यार ... एक अदद शादी ... दो अदद बच्चे ...

युवती : तुम गुस्से में हो।

युवक : 'प्यार करो–अपने–आपको तलाषने के लिए।' यह तुमने कहा था, याद है ? और तलाषते–तलाषते ....

युवती : भीतर पहुॅची ... तुम्हारे द्वारा अपने भीतर। वहां मुझे एक औरत मिली। उसने गरदन पकड़कर जैसे मुझे बाहर निकाल दिया।

युवती जैसे टूटकर कुर्सी पर गिरती है।

वह अपने को संभाल नहीं पा रही है।

युवती : एक बार अंक से लगकर मुझे ...

युवक : अभी और जलील करना चाहती हो ?

युवती : (चुप है।)

युवक अटैची खोलकर साड़ी निकालकर युवती के ऊपर फेंकता है।

युवक : आग लगा देना।

युवती : उस और के निर्माण में तुम्हारा भी हाथ है। यह साड़ी सहेजकर रखूंगी। इसको पहनकर ...

युवक : बधाई।

युवक साड़ी में मुंह गाड़े हुए है।

युवक : कृपा कर अब जाओ।

कविता : आप ऐसे बोल रहे हैं कि मैं अब घर जाऊं। जी नहीं। पानी तो पिलाइए।

संजय : अभी लाया।

संजय भीतर जाता है। कविता इस बीच जैसे उसी युवक के सामने खड़ी हो। पानी लिए संजय आता है।

संजय : पानी।

कविता : नाटक में कुछ और हो सकता था।

संजय : हो सकता है ?

कविता : क्यों नहीं ?

संजय : जैसे आप अपनी हर चीज निष्चित रखती हैं, वैसे ही नाटककार भी अपने चरित्रों के बारे में निष्चित है।

कविता : नाटक इतना निष्चित क्यों हैं ?

संजय : जीवन क्यों निष्चित किया हुआ है ?

कविता : वह बदला नहीं जा सकता।

संजय : उसे बदलना क्यों नहीं चाहतीं ?

कविता : मजबूरी ...

संजय : कायरता ...

कविता : फिर भी स्वास्थ्य के लिए बहुत–बहुत अच्छा।

संजय : 'हिपोक्रेसी' ...

कविता : आदत ....

संजय : एक केपन्यूल साढ़े आठ बजे, दूसरी ग्यारह चालीस पर ...

कविता : आप समझते हैं जो आप करते हैं वही बहादुरी है, वही सच्चाई है, उसी में गति है।

संजय : कुछ तो है उसमें !

कविता : जी में आया, पत्नी छोड़ दी, जैसे कोई भूमिका पसन्द न आए।

संजय : उसके साथ मर जाता नही ंतो ?

कविता : नाटक एक का चरित्र, याद किया, कुछ दिन मंच पर निभागया, भुला दिया।

संजय : कुछ दिन ही सही, उसे महसूस किया, पूरी तरह जिया, भोगा, एक तेज षिद्दत के साथ उसे ... । हम अभिनेता हैं पर ...।

कविता : अभिनेता, अभिनेता। अभिनेता क्या आदमी नहीं होता, उसमें क्या भावनाएं नहीं होती ?

संजय : होती क्यों नहीं। आप–से, साधारण आदमी से कहीं अधिक भावुक होता है वह।

कविता : आप नहीं हैं। आप हैं केवल एक बनावटी आदमी।

संजय : वह आप हैं।

कविता : आप मुझपर रोब नहीं गांठ सकते।

संजय : मतलब ?

कविता : मैं आपकी पत्नी नहीं।

संजय : आप बिलकुल बेकार की बातें करती हैं।

कविता : (सहसा) कहा था न, बातें करना नहीं आता।

विराम

कविता : आपका मूड़ खराब हो गया–चलिए, रिहर्सल कीजिए।

संजय : जी नहीं, अब आप जाइए।

कविता : कहा ? कैसे जा सकती हूँ ?

संजय : तो मत जाइए।

कविता : चलिए, रिहर्सल कीजिए।

संजय : नहीं।

कविता : आप लोगों के लिए हर चीज 'नहीं', बस। पढ़िये युवती का यह 'डायलाग'।

संजय : (चुप)

कविता : वह जाने के लिए नहीं, भागने के लिए आई थी।

संजय : (चुप)

कविता : नहीं समझे !

संजय : नहीं।

कविता : भागना कैसे होता है ?

सन्नाटा खिंच जाता है।

कविता : भाग ...ना।

संजय : घर में क्या काम करती हैं ?

कविता : कुछ नहीं।

संजय : कुछ तो ?

कविता : तो...

संजय : कुछ न करने से आत्मा बीमार हो जाती है।

कविता : आत्मा ? मुझमें नहीं।

संजय : आपमें है।

कविता : (सहसा) बड़ी अच्छी चूड़ियां हैं। कहां से लाए ?

संजय : पहनोगी ? नाटक में यह नहीं है...

कविता : समझ लो है।... चलो। अपने हाथ से (निकालकर देती है।) पहना ही दो।... ऐसे नहीं धीरे–धीरे चूड़ी टूट जाएगी।

संजय : टूट जाने दो... बहुत सारी हैं।

कविता : चूड़ी टूटने का मतलब जानते हो ? बड़ा अषुभ माना जाता है।

चूड़ी टूट जाती है।

कविता : क्या कर दिया ? लाल धागा होगा ? चूड़ी टूटने से लाल धागा झट बांध लेना चाहिए।

संजय : मुष्किल है।

विराम

संजय : क्या हो गया ?

कविता : (चुप)

संजय : तबीयत तो ठीक है ?

कविता : तबीयत.. हां हां।

कविता अपने को जैसे ठीक कर रही होती है।

संजय : कविता।

कविता : गलती मेरी ही थी–चूड़ी न पहनती ...

संजय : तभी नाटक में हीरो हीरोइन को चूड़ी नहीं पहनाता।

कविता : हंसिए नहीं, हर विष्वास के पीछे ...

संजय : विष्वास नहीं

कविता : सबको अपनी अपनी जिन्दगी जीनी ही होती है।

संजय : और काफी बना ले आता हूं।

कविता : नहीं, नहीं, अब बिना स्नान किए कुछ खांऊ–पीऊंगी नहीं।

संजय : क्या हो गया ?

कविता : कुछ भी नहीं चलिए, सीन खत्म कर लें।

संजयः ना बाबा ... कहीं कुछ हो गया तो ...

कविता : ऐसा लगता है ?

संजय : लगता है।

कविता : क्या लगता है ?

संजय : लगता है।

कविता : हूॅ ?

संजय : आप मुझे बहुत अच्छी लगती हैं।

कविता : अरे, देखो न ... मेरा जूड़ा खुल गया।

जूड़ा बनाने लगती है।

कविता : कैसी लगती है– केष–श्रृंगार करती हुई स्त्री ?

संजय : (चुप है।)

कविता : ओ ... बहरे हो क्या ?

विराम

कविता : अब कैसी लगती हूॅ ?

संजय : कैसे कहूॅ ?

कविता : मौका मिला है कह लो, वरना पछताओगे।

संजय : बहुत ....

कविता : बिना किसी विषेषण के बोलो।

संजय : उसके बिना कैसे ?

विराम

कविता : अब भी हो कती हूँ।

संजय : क्या ?

कविता : क्यों नहीं ? कोई अपराध है क्या ?

संजय : क्या बोल रही हैं ?

कविता : क्या ? देखो, कहीं कुछ जल रहा है।

संजय : नहीं तो।

कविता : देखो, देखो ...

संजय : कहां ?

कविता आवेष में वस्त्र उतारना शुरू करती है। संजय घबड़ा जाता है।

संजय : यह क्या कर रही हो ?

कविता : कहीं कुछ जल रहा है।

संजय : कविता ... कविता ...

कविता : बचाओ ... बचाओ ...

चीखती हुई सोफे पर गिर जाती है। संजय त्रस्त खड़ा रह जाता है।

संजय : डाक्टर बुलाऊं ?

कविता : करफ्यू हट गया ?

संजय : अभी नहीं।

कविता : 'रिलेक्स' हुआ ?

संजय : पूछता है।

फोन करता है।

संजय : हेलो .. जी ? सुबह पांच बजे तक है ? कुछ 'रिलैक्स' हुआ ? जी ... जी ... हां ... हूँ, जी।

रखता है।

संजय : सिर्फ घायल, मरीज, बच्चों के लिए ...

कविता : (अजब ढंग से हंसकर रह जाती है।)

संजय : आप तीनों में नहीं आतीं ...

कविता : तीनों ...

संजय : डाक्टर बुलाऊं।

कविता : काफी पिलाओ यार।

संजय : 'गुड ... फाइन ...

संजय भीतर जाता है। कविता फोन करती है। फोन वैसे ही है। रख देती है। संजय आता है।

कविता : इतनी जल्दी ?

संजय : उसी वक्त पानी चढ़ा आया था...

कविता : पानी भाप बनकर उड़ा नहीं ?

संजय : केतली 'आटोमेटिक' है ?

कविता : 'आटोमेटिक'

संजय : अब आपको 'ब्लेक काफी' पीनी पड़ेगी।

कविता : किसी पुरूष के सामने कपड़ा उतार फेंकना। मेरे पति 'टेक्सटाइल मिल' के मैनेजिंग डाइरेक्टर हैं।

संजय : जी ?

कविता : इस बार मैं बनाती हूँ काफी।

संजय : आप आराम कीजिए।

कविता : क्यों ? मुझे क्या हुआ ?

कविता काफी बना रही है।

कविता : क्या देख रहे हैं ?

संजय : मेरे भीतर जैसे कोई चट्टान थी जो टूट रही है।

कविता : किसी नाटक का 'डायलाग' है न ?

संजय : (चुप है।)

कविता : लो काफी।

दोनों पीते हैं।

संजय : जरा हाथ देखुं।

कविता : जानते हैं देखना ?

वह हाथ दे देती है।

संजय : नब्ज बड़ी तेज चल रही है।

कविता : सिर्फ तेज ?

संजय : कोई काम क्यों नहीं कर लेतीं ?

कविता : सवाल इज्जत का है ?

संजय : 'एक्टिंग' कर सकती हैं।

कविता : वे नहीं चाहेंगे।

संजय : पूछकर देखिए तो।

कविता : पता है।

विराम

कविता : प्यासी हूँ... प्यास लगी है।

संजय : लीजिए।

पानी पीती है।

कविता : और। (हंसना शुरू करती है) और।

संजय : और लीजिए।

गिलास का पानी संजय के ऊपर फेंककर बेतरह हंसती है।

संजय : अरे यह क्या किया ?

कविता : भीग गई ?उतार दीजिए।

संजय : बदल आता हूँ।

कविता : ना।

पकड़ लेती है। खुद बटन खोलकर संजय की कमीज उतारना चाहती है।

संजय : क्या कर रही हैं ?

संजय के खुले सीने में मुँह गड़ा देती है।

संजय : आपकी तबीयत ठीक नहीं है ?

कविता : लगता है न ?

संजय : लगता है।

कविता : थोड़ी रोषनी कम कर दूँ ?

बढ़कर एक टेबल–लैम्प बुझा देती है।

संजय : कविता।

कविता : क ... वि ... ता ...

संजय : मैं तुम्हें।

कविता : मुझे ? सच ?

संजय : तुम चाहो तो। ...

कविता : चाहती हूँ।

संजय धीरे–धीरे उसे अंक में भर लेता है।

कविता : (सहसा) नहीं।

संजय : (अवाक्)

कविता : नहीं, नहीं, मैं नहीं कर सकती।

संजय : चाहती नहीं ?

कविता : चाहती हूँ पर ...

संजय : झूठी।

कविता : नहीं।

संजय : बुजदिल।

कविता : नहीं।

संजय : मेरे साथ नाटक ?

कविता : नहीं नहीं।

संजय : मुझे क्या समझ रखा था ?

कविता : मुझपर दया करो !

संजय : क्यों यह सब किया ?

कविता : पता नहीं।

संजय उसे पकड़ता है। वह चीखती है।

संजय : क्या हो तुम ?

कविता : (मूर्तिवत्)

संजय : क्या हो ?

कविता : (मुंह छिपा लेती है।)

संजय : कायर ....

कविता मूर्तिवत् चुप

संजय : जान–बूझकर। हर पुरूष तुम्हारे लिए ... लगा कि तुम निष्चित की बाट से बाहर निकलना चाहती हो। सोचा, साथ दूँ। पर किसको, क्यों ?

कविता : (उसे एकटक निहारती है।)

संजय अन्दर कमरे में चला जाता है।

कविता सोफे पर गिर जाती है, प्रकाष बुझता है।

तीसरा दृष्य

गौतम फर्ष पर अस्त–व्यस्त सो गया है। टेबल पर शराब की करीब–करीब खाली बोतल पड़ी है। बाहर सहसा शोर होता है। फायरिंग और चीखें। शोर। मनीषा भागी हुई आती है। अन्दर आकर भीतर से दरवाजा बन्द कर लेती है और आंख मूंदे दरवाजे के सहारे खड़ी रह जाती है। बढ़कर बोतल से थोड़ी 'ड्रिंक' लेती है।

मनीषा : (दो घूंट पीकर) जैसे कोई मेरा पीछा कर रहा है। क्या है वह ? कौन हैं ? जहां से भाग निकली थी कुछ समय पहले फिर वहीं स्वयं आ गई ? जिस चीज ने यह कमरा छोड़ने पर मजबूर किया वही फिर यहा ले आई। सोचा था यहां से भागकर निकल जाऊंगी, लेकिन ... बाहर भी जैसे इसी कमरे का विस्तार है। पूरा शहर जैसे यही कमरा है–झूठ, कायरता, वासना, विस्तार में जाकर, अपराध, हिंसा, बलात्कार बन गए हैं। कैसे सोया हुआ है ? एक अबोध बालक की तरह, जागते हुए देखा दुःस्वप्न आंख लगते ही टूट गया हो जैसे। यह नींद के कारण है या नषे के ... नींद ही है शायद, नषे में होष खो बैठनेवाले तो शहर के विस्तार में, सड़कों पर, गलियों में, पागलों की तरह दौड़ रहे थे। लपलपाती जीभें, अंगार आंखे, बुझा विवके। ओ, देखो मैं लौट आई, जहां मेरा दम घुटने लगा था, वहीं खुलकर सांस ले रही हूॅ अब। जागो, आंखें खोलो, मेरे साथ मनमानी करो–मैं कुछ नहीं करूंगी, भागूंगी भी नहीं। भागना आसान नहीं। भागकर कोई जाएगा कहां, जब सब जगय यही कुछ है ? उठो ... ए उठो।

झकझोरती है।

गौतम : (उनींदा) कौन ?

मनीषा : मिसेज गौतम अभी तक नहीं लौटीं ?

गौतम : तुम ... आप ?

मनीषा : हैलो ... मैं फिर आ गई। लेकिन अब जाऊंगी नहीं, भागूंगी नहीं। अब मुझे तुमसे डर नहीं।

गौतम : 'आई एम वेरी सॉरी'।

मनीषा : 'सॉरी' क्यों ?

गौतम : शराब कुछ ज्यादा हो गई थी इसीलिए मैं अपने आपे में नहीं रहा। मुझे माफ कर दो।

मनीषा : माफी ? किस बात की ?

गौतम : मुझे वह सब नहीं करना चाहिए था।

मनीषा : तुमने किया ही क्या ?

गौतम : झूठ बोला, तुम्हारे साथ जबरदस्ती करने की ...

मनीषा : कोषिष की ।तो ?

गौतम : मैं शर्मिंदा हूॅ। इसलिए नहीं कि मैंने मुम्हारे साथ सोना चाहा–लड़कियों की मुझे कभी कमी नहीं रही। तुम्हारी उम्र की बीसियों लड़कियां मेरे यहां काम करती हैं। उनमें से कुछ तो हर समय मेरे इषारे पर तैयार रहती हैं– इसलिए इस तरह का व्यवहार मैंने पहले कभी नहीं किया। इसलिए कि तुम्हारे विष्वास को ठेस पहुॅचाई मैंने वह सब करके।

मनीषा : मेरे विष्वास को ठेस नहीं पहुॅची, वह और पक्का हुआ। मुझे लगता है, परिवर्तन अब अनिवार्य है, यदि हम जीना चाहते हैं, जीवन को अर्थपूर्ण बनाना चाहते हैं। तुमने ऐसा पहले कभी नहीं किया था, आज किया ... यानी जिस तरह का जीवन तुम जी रहे हो उससे तुम भागना चाहते हो।

गौतम : शायद तुम ठीक कह रही हो।

मनीषा : लेकिन जल्दी में गलत रास्ते पर भाग पड़े। ऐसे अकेले तुम ही नहीं हो। हमस ब गलत रास्तों पर भागने वालों में हैं, क्योंकि सही रास्ता हमें नहीं मालूम। हम समझते रहे हैं, कुछ भी नया, कुछ भी अनोखा, कुछ भी अजीब करके हम जीवन को बदल सकते हैं, समाज को बदल सकते हैं, लेकिन यह बदलना तो केवल सतही है, कुछ देर के लिए है ...

गौतम : इस उम्र में तुम इतना कुछ कैसे जानती हो ?

मनीषा : मैं भी पहले नहीं जानती थी–आज ही जाना है इतना कुछ–आंखो से देखकर–खुद पर झेलकर, इस करफ्यू के कारण, तुम्हारे कारण, अपने यहां से भागने के कारण।

गौतम : मेरे कारण तुम्हें यहां से भागना पड़ा।

मनीषा : ना भागती तो इतना कुछ जान पाती ? भागने के बाद से अब तक मैं घूमती रही हूँ–यहॉ से निकल कर कुछ दूर ही पहुँची थी कि शराब में धुत कुछ लोग आते दिखाई दिए। मैं पहले ही बेहद डरी हुई थी, सो एक दुकान के तखते के नीचे छुप गई। वो लोग जोर–जोर से बातें करते आ रहे थे। हालांकि नषे की वजय से उनके शब्द फिसल रहे थे, फिर भी कुछ–कुछ समझ में आया कि वे लोग पेषेवर गुण्डे थे और एक राजनीतिक दल के किराये के टट्टू। आज के दंगे का सारा दोष दूसरे दल पर पड़े, इस काम पर उन्हें तैनात किया गया था। जाहिर है, वे खुष थे, क्योंकि उनका काम ठीक–ठाक हो गया था। तभी दो नौजवान लड़के कहीं से भागते हुए आए और उन पर एक बम फेंककर गायब हो गए। धुआं छंटते–छंटते एक पुलिस जीप वहां आ पहुँची। गुण्डों के दल के दो लोग घायल हुए थे, इस लिए उन्हें अस्पताल ले जाने के लिए उसमें बैठा लिया गया। सिपाहियों ने उन लड़कों की तलाष में दुकानों के तख्तों के नीचे, आसपास की गलियों, कूड़े के टीलों को छानना शुरू किया और मैं उनके हाथ पड़ गई। मुझे देखकर इन्सपेक्टर ने भारी भरकम गाली दी और जीप में बिठा लिया। अस्पताल होकर पुलिस चौकी पहुँचते–पहुँचते उन्होंने मेरे सारे शरीर को बुरी तरह मथ दिया था। सारे रास्ते कई हाथ एक साथ मेरे जिस्म पर खेलते रहे और मैं मैं समाज की रक्षा करने वाले इन जानवरों की लीला देखती रही। पुलिस चौकी पहुँचने पर पूछताछ करने के लिए मुझे एक कमरे में ले जाया गया। मुझसे कहा गया, मै। नक्सलाइट हूँ। मेरे मना करने पर डेडों की बौछार शुरू हुई क्योंकि बिना पिटे कौन मानता है ि कवह नक्सलाइट है। उन्हें मेरे जिस्म पर यह कपड़े अच्छे नहीं लग रहे थे, इसलिए उन्हें उतार दिय गया। इसके बाद जो हुआ वह कहना मुष्किल है। मैंने अपने सारे जीवन में जितने लोगों के साथ शरीर–सम्बन्ध रखा उससे ज्यादा एक घंटे में ...

गौतम : ऐसा भी होता है ?

मनीषा : कल तक मैं भी नहीं मानती थी।

गौतम : यहां कैसे पहुँचीं ?

मनीषा : सब कुछ खत्म होने पर उन्हें लगा मैं नक्सलाइट नहीं हो सकती। ज्यादा से ज्यादा एक 'स्ट्रीट वाकर' हो सकती हूँ। और मुझे पास के चौक पर उतार दिया गया।

गौतम : यह अमानवीय है।

मनीषा : इसी लिए कहती थी, तुम शर्मिंदा क्यों होते हो ? तुमने तो केवल कोषिष ही की। वह भी खुद नहीं, कुछ मेरे उकसाने पर, कुछ शराब के नषे में।

गौतम : लेकिन इस सबका जिम्मेदार मैं हूँ।

मनीषा : नहीं, केवल तुम नहीं, हमस ब जो अपने–आपको जिन्दा समझते हैं।

गौतम : सुनो, चलो अंदर चलकर आराम कर लो।

मनीषा : अगर मिसेज गौतम आ गई तो ?

गौतम : आने दो। मैं साफ–साफ कह दूंगा कि तुम ...

मनीषा : कि मैं .. ?

गौतम : तुम मेरी मित्र हो ?

मनीषा : उन्हें अच्छा लगेगा ? वह क्या समझेंगी इस कमरे की हालत और मुझे यहां देखकर ?

गौतम : जो जी आए समझें। मुझे किसी की परवाह नहीं, किसी से कोई डर नहीं।

मनीषा : तुममें यह परिवर्तन !

गौतम : तुम्हारे कारण।

मनीषा : यहां आओ ... मेरे पास ... और पास (उसकी गोद में सर रख देती है।) तुम्हारा वह रूप एक 'रिएलिटी' समझकर मुझे 'एक्सेप्ट' कर लेना चाहिए था, 'रिएलिटी' से भागना मुष्किल है।

गौतम : चुपचाप लेटी रहो–आराम से–अगर कहो तो अन्दर कमरे में सुला आऊं।

मनीषा : नहीं, यहीं रहना चाहती हूँ–इसी तरह।

गौतम : (उसके बाल सहला रहा है और उसे देख रहा है।)

मनीषा : क्या सोच रहे हो ?

गौतम : बहुत कुछ एक साथ।

मनीषा : मुझे नहीं देख रहे ?

गौतम : देख रहा हूँ।

मनीषा : क्या ?

गौतम : तुम्हारे चेहरे पर सहन करने से पैदा हुई कांति।

मनीषा : सिर्फ वही ?

गौतम : नहीं, उस कान्ति के कारण दमकता हुआ तुम्हारा रूप।

मनीषा : इस रूप को अपनाना नहीं चाहते ?

गौतम : नहीं, अब नहीं चाहता। केवल आंखों की ज्योति में बसा लेना चाहता हूँ।

मनीषा : तब तो चाहते थे।

गौतम : तब यह रूप कहां देख पाया था ?

मनीषा : सच कह रहे हो या डरकर ?

गौतम : डर तब रहा था, अब कोई डर नहीं।

मनीषा : मैं तब भी यही थी, तुम ठीक से देख नहीं पाए।

गौतम : पर अब मैं कुछ और हूँ।

मनीषा : बताओ न अब तुम क्या हो ... कहीं फिर अपने उसी किले में तो बंद नहीं हो गए जिससे बाहर आने के लिए तुमने शराब का सहारा लिया था।

गौतम : (चुप)

मनीषा : तुम अब भी वही हो। चलो, बाहर आओ–इस बार बिना शराब पिए।

गौतम : (चुप)

मनीषा : चुप क्यों हो गए ? इतना मुष्किल नहीं है यह सब। अच्छा ... यह टाई निकाल दो। लाओ, मैं तुम्हारी यह कमीज निकाल दू। इसी तरह तुम भी मेरा कुरता निकालो .... निकालो ... , नहीं निकलता तो फाड़ दो ....

गौतम धीरे–धीरे उसे अंक में भर लेता है।

गौतम : किसनी सुन्दर हो तुम ... कितनी निर्मल ?

मनीषा : पहले नहीं देखा था ?

गौतम : तब आंखें बन्द थी ,अन्दर–बाहर अंधेरा था। उसमें साफ–साफ दिखा नहीं, अब लगता है तुम्हारे सामने मैं एक नन्हा सा बच्चा हूँ–सचमुच नन्हा बच्चा।

मनीषा : आओ नाचें, खेलें। दौड़कर अन्दर छुप तो नहीं जाओगे ?

गौतम : नहीं, नहीं, नहीं।

दौड़कर मनीषा को बांहों में भर लेता है।

मनीषा : सुनों ....

मोमबत्तियां जलाती है।

दोनों के हाथ में एक–एक।

मनीषा : तुम्हें कोई मंत्र याद है ?

गौतम : (सोचता है)

मनीषा : अरे, तुम्हारी शादी में तो मन्त्र पढ़े गए होंगे ?

गौतम : कुछ याद नहीं आ रहा।

मनीषा : कोई भी, कुछ भी ?

गौतम : हां ... ओम नमः स्वाहा ...

मनीषा : ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

गौतम : ओम् नमः स्वाहा ...

मनीषा : ओम् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

यह कहते हुए दोनों परिक्रमा करने लगते हैं–एक बिन्दु पर आकर दोनों आलिंगनबद्ध हो जाते हैं। मन्त्र गूँजता रहता है।

चौथा दृष्य

संजय का वही कमरा, कविता सोफे पर जैसे सो गई है पर ज्यों–ज्यों प्रकाष तेज होता जाता है, लगता है वह सोई नहीं, सोच रही है।

कविता : आज एक बार फिर मैं अपने से भाग खड़ी हुई। फिर से दुहराई वहीं पुरानी कायरता की कहानी। आगे बढ़कर वापस लौटना . . . तग तक चलता रहेगा यह स्वार्थ का खेल ? कब तक डरती रहूँगी मैं ? कब तक चुनाव

की यह गलती होती रहेगी ... नाटक में तो कम से कम कुछ और हो ही सकता था ... लेकिन कैसे हो सकता था ? जब जीवन में कुछ और कुछ हटकर नहीं हो सकता था ?जब जीवन में कुछ और कुछ हटकर नहीं हो पाएगा, नाटक की निष्चलता कैसे टूटेगी ? नाटक तो जीवन का प्रतिबिम्ब ही है। पहले जीवन, फिर नाटक। बिना जीवन बदले, नाटक बदलने की बात असंभव है, मूर्खतापूर्ण है ...। मैंने क्यों ऐसा किया ? क्यों बेकार ही उसे अपमानित किया ? कसूर मेरा था, बन्धन मैं तोड़ना चाहती थी और जब उसने सहायता की, काम को सहज बनाने में, मैं डर गई, कांप गई। मेरी गलती की सजा उसे क्यों मिले ? मुझे उससे माफी मांगनी चाहिए। मुझे अपने जीवन के बोझ का दोष उठाना है, वह भागी क्यों बने ?

दरवाजा खटखटाती है।

कविता : सुनिए, दरवाजा खोलिए, मुझे आपसे कुछ कहना है।

संजय : (अन्दर से) सो जाइए।

कविता : नींद नहीं आ रही।

संजय : (अन्दर से) आ जाएगी, कोषिष तो कीजिए।

कविता : प्यास लगी है ?

संजय : (अन्दर से) पानी रखा है वहीं। पी लीजिए।

कविता : आप बहुत नाराज है मुझसे, मैं जानती हूँ, फिर भी मैं मेहमान हूँ आपकी। इतना ख्याल तो कीजिए।

संजय : (दरवाजा खोलकर) मुझे तो ख्याल है कि आप मेहमान हैं, आप ही भूल गई थीं।

कविता : अब याद रखूंगी।

विराम

संजय बैठकर नाटक पढ़ने लगता है।

कविता : यूं ही बैठे रहेंगे ? कुछ बोलेंगे नहीं अपने मेहमान से ?

संजय : आप सोई क्यों नहीं ?

कविता : अन्दर भी आप क्या यही नाटक पढ़ रहे थे ?

संजय : यह भी पढ़ रहा था और शायद कुछ सोच भी रहा था ?

कविता : क्या ?

संजय : छोड़िए उसे।

कविता : अच्छा एक बात बताइए। आपके लिए नाटक ही सब कुछ है ?

संजय : अब तो शायद वही सब कुछ है। पन्द्रह वर्ष ... जीवन के पन्द्रह वर्ष मैंने इसी में लगा दिए। कुछ मिलता है या नहीं, यह तो सोचे–समझे बिना मैं लगा रहा, चिपका रहा हूँ नाटक की इस दुनिया से। मैंने इसी में दुनिया को देखा है, जीवन को जाना है, मृत्यु को समझा है। इससे हटकर जीवन की कल्पना मैंने की ही नहीं।

कविता : आपके पास अपना अलबम तो होगा ?

संजय : अलबम ?

कविता : हां, आज तक आपने जितने चरित्र किए हैं, उनके चित्र का कोई चित्र नहीं, न जाने कितने चरित्रों को मैंने मंच पर जीवन दिया है ... कागजों पर शब्दों के रूप में मृत पढ़े चरित्रों को, लेकिन जीवन देने के बाद मैंने उन्हें भुला दिया है।

कविता : अखबारों में छपी समीक्षाएं तो होंगी आपके पास !

संजय : वह भी नहीं हैं।

कविता : अपनी प्रषंसाएं भी नहीं रखी हैं आपने ?

संजय : नहीं। मैं उन समीक्षाओं को अधिक महत्व नहीं देता, एक बार पढ़ना–भर जरूर है, लेकिन फिर फेंक देता हूँ।

कविता : ऐसा क्यूं करते हैं ?

संजय : आम तौर पर समीक्षक नाटक और रंगमंच के बारे में बहुत कम जानते हैं। उन्हें पना नहीं होता कि क्या लिखें। एक बार एक साप्ताहिक में मेरे एक रोल की बड़ी प्रषंसा की गई, लेकिन पूरी समीक्षा पढ़ने पर लगा था कि समीक्षक महोदय को नाटक रत्ती–भर भी समझ नहीं आया। ऐसी प्रषंसा का क्या लाभ ?

कविता : आप बहुत अजीब हैं।

संजय : आप नहीं हैं ?

कविता : कैसे ?

संजय : एक पल लगा, जैसे आप अपना सब कुछ देने को तत्पर हैं और दूसरे ही पल आप फिर अन्दर सिकुड़ गई, यह अजीव नहीं ?

कविता : वह नाटकीय मोड़ नहीं था ? जीवन में ऐसे मोड़ नाटक से कहीं अधिक आते हैं। नाटक में आप उन्हें आसानी से मान लेते हैं तो जीवन में क्यों नहीं मान लेते ?

संजय : नाटक में हर नाटकीय मोड़ के पीछे एक कारण होता है, एक तर्क होता है। जब वो न हो तो हम उसे 'मेलो ड्रैमेटिक' कहते हैं।

कविता : कारण उसके पीछे भी था, लेकिन उसका समझना मुष्किल था। आप केवल नाटक को ही समझते हैं, जीवन को नहीं। नाटक को इस लिए शायद िकवह निष्चित होता है और जीवन उतना निष्चित नहीं, जितना आप मानते है।

संजय : शायद आपकी बात ठीक है। मैं कभी जीवन से उस तौर पर जुड़ नहीं पाया। मैंने नाटकों के साधारण–से जीवन को जाना–समझा, जीवन के माध्यम से नाटकों को नहीं।

कविता : मेरे उस व्यवहार से यदि आपका अपमान हुआ, दुःख हुआ तो मुझे क्षमा कर दीजिए।

संजय : भूल जाइए उसे। आप क्या हैं, मैंने समझने में भूल की। नाटकों के चरित्र समझता रहा हूँ, जीवन–चरित्र नहीं समझ पाता।

कविता : थोड़ा पानी दीजिए।

संजय उसे पानी देता है।

संजय : ऐसा क्यों होता है ? मैं क्यों अपने इर्द–गिर्द बिखरे हुए चरित्रों को समझ नहीं पाता ? क्यों मुझे उनकी छोटी से छोटी क्रिया–प्रक्रिया अजीब लगती है ? शायद इसी कारण मैं किसी से कोई सम्बन्ध निभा नहीं पाता।

कविता : आप चरित्रों की दुनिया में रहकर स्वयं एक चरित्र बन गए हैं। वैसे अपने–आप में आप एक महान चरित्र हैं।

संजय : प्रषंसा नहीं !

कविता : (हंसती है) आपने मुझे क्या समझा ?

संजय : मैंने आपको एक स्त्री समझा था।

कविता : था ? अब नहीं समझते ? जैसे मैं आपको केवल एक पुरूष समझती हूँ।

संजय : केवल एक पुरूष ?

कविता : हां, एक पुरूष । उसके सब अर्थो में। पुरूष जिसके बिना स्त्री का कोई अस्तित्व नहीं, पुरूष जिसकी चाह हर स्त्री अपनी आत्मा में पालती है, पुरूष जिसकी गोद ही स्त्री की मुक्ति है...

संजय : आप एक बार फिर से वही शुरू कर रही हैं ?

कविता : हां, एक और नाटकीय मोड़। सोचा–समझा हुआ, निर्धारित किया हुआ, शायद निष्चित किया हुआ। लेकिन जैस नाटक में होता है वैसा नहीं।

संजय : आप जानिए, पता नहीं आप क्या हैं, क्या चाहती हैं ?

कविता : आपको तो यह भी पता नहीं है कि आप क्या हैं और क्या चाहते हैं।

संजय हंस पड़ता है।

संजय : इतनी निडर हैं आप ?

कविता : वही तो... वही तो होना चाहती हूँ।

संजय : अगर आप ऐसी थीं

कविता : अगर आप ऐसे होते...

संजय : बात तो पूरी कहने दीजिए।

कविता : बात क्या पूरी हो पाती है ?

संजय : सुनो तो...

कविता : सुनो तो...

संजय : तुम पहले...

कविता : तुम पहले...

संजय : मैं पूछ रहा था...

कविता : मैं पूछ रही थी....

संजय : आज सारी रात यही होगा।

कविता : आज सारी रात यही होगा।

संजय : देखो, बोर मत करो।

कविता : देखो, बोरे मत करो।

संजय : हा ... हा ... हा ... हा ...

कविता : हा ... हा ... हा ... हा ...

विराम

कविता : क्या सोच रहे हैं ?

संजय : चलिए, अन्दर चलिए।

कविता : नहीं बाहर।

संजय : बाहर माने सड़क पर ?

कविता : बाहर माने सड़क पर ?

विराम

संजय खिड़की बंद करने के लिए जाता है।

कविता : बंद मत कीजिए। खुली रहने दीजिए। आज सब कुछ खुला रहने दीजिए।

संजय कविता को अंक में भर लेना चाहता है।

कविता : रूकिए ... ऐसे नहीं। ऐसे नहीं। (कमरे में नजर दौड़ती है।) ऊपर देखिए ... देखते ... रहिए। हंस का एक जोड़ा उड़ रहा है ... उड़ता–उड़ता पास आ रहा है .. और पास ... बिल्कुल सिर के ऊपर ... उनके पंख से दो पंख टूट कर हवा में उड़ रहे हैं, नीचे गिर रहे हैं पकड लो हवा में जमीन पर गिरने न पाए ... पकड़ लो ... शाबाष !

जैसे दोनों के हाथ में वह अंष आ जाता है।

कविता : अपना पंख मेरे जूड़े में लगाओ ... मैं अपना पंख तुम्हारे बालों में बांधती हूँ।

संजय वह उद्दाम पंख कविता के जूड़े में लगाता है। कविता अपना पंख संजय के सिर पर एक कपड़े के सहारे बांध देती है।

कविता : चलो, अब नृत्य करें आदिम नृत्य। लो, उसे बजाओ।

कविता एक डंडा लेकर नृत्य करती है और संजय 'मेटल' की टी ट्रे बजाता हुआ उसके साथ नृत्य करने लगता है।

कविता : (नृत्य करती हुई जैसे वह कोई पूजा–गीत गाने लगती है।)

पवन झड़ लागी हो धीरे–धीरे

हे–हो–हे, कित उठी है बयरिया

पूरब–पष्चिम से हो धीरे–धीरे ...

दोनों एक सग्ड नृत्य करते हुए गाने लगते हैं।

संजय : हो गोरी, पूरब से उठी है बयरिया

पछिम झड़ लागी हो धीरे–धीरे।

कविता : हे–हो–हे, बोलो जर केवड़िया

कलेजा मेरा कांपे हो धीरे–धीरे।

संजय : हो गोरी, सब खुली है केवड़िया

जमुना जल बरसे हो धीरे–धीरे।

दोनों : (उन्मत्त) पवन झड़ लागी हो धीरे–धीरे

पवन झड़ लागी हो धीरे–धीरे।

दोनों एक–दूसरे को पकड़कर नाचने लगते हैं। कविता संजय के अंक में जैसे बेसुध होती चली जा रही है। सारे वातावरण–भर में वही संगीत छा जाता है।

पांचवां दृष्य

गौतम सोफे पर अस्त–व्यस्त पड़ा सो रहा है। कविता आती है और पूरे कमरे की स्थिति तथा गौतम को निहारती रह जाती है।

कविता : गौतम। यह वही मेरा कमरा है ना, मेरा घर।

फर्ष पर गिरा रूमाल उठाकर देखती है

कविता : यह।... गौतम।... वही है। एक–एक चीज... वहीं पर्दे...

कविता : दो गिलास... वही दीवारें... छत... फर्नीचर... रात बीती नहीं ?

दोनों को धीरे–धीरे खनकाती है।

कविता : हम दोनों के बीच...

टेलीफोन ठीक करती है।

कविता : डरना नहीं चाहिए। कल कल्पना तक नहीं कर सकती थी, लेकिन आज इस समय तुम्हें देखकर... पर वह सब...

अलबम उठाती है।

कविता : मेरी पसंद। मेरा फैसला, मेरा चुनाव।

जली हुई मोमबत्ती देखती है।

कविता : यह इस तरह चुपचाप सोया है ? बीमार षिषु जैसा। विवष...। पाबंदी क्यों रहे ? बाहर ऊंचे पहाड़, गहरी नदियां हरे–भरे मैदान। यह जीवन... इस पर हमारा अधिकार क्यों नहीं ?

गिरी हुई तलवार उठाती है।

कविता : हम प्यार कर सकते हैं। संवाद कर सकते हैं...

तलवार म्यान में रख देती है।

कविता : सुबह के पांच बज चुके हैं पर अब भी राज बाकी है ? सुबह होगी... सबको चुनाव का अधिकार है... पर सही क्या है ? तुम्हारे और मेरे बीच जो था, वह गलती मेरी थी, सोचती थी, ऐसे ही चलता है... तुम और तुम.. मैं और मैं लेकिन अब नहीं–तुम और मैं, मैं और तुम, तुम और वह, वह और मैं। पर सब एक–दूसरे से बंधे हैं।

सोफे पर बैठती है।

गौतम : कौन ? अरे तुम आ गई ?

कविता : (चुप है।)

गौतम : कब आई ? एक सिगरेट पिलाओ।

मुंह में सिगरेट देकर जलाती है।

गौतम : काफी देर हो गई। कुछ बोल क्यों नहीं रही हैं ?

कविता : पानी पियोगे ?

गौतम : बहुत अच्छी हो।

पानी देती है।

कविता : बिना विषेषण के बात नहीं कह सकते ?

गौतम : अभी करफ्यू टूटा नहीं।

कविता : टूट गया।

गौतम : पांच बजे टूटना था।

कविता : उससे कुछ पहले ही ....

गौतम : क्या बजा है ?

कविता : पांच बजकर पांच मिनट।

विराम

गौतम कमरे की हालत देखकर

गौतम : यहां कुछ लोग आए थे। तुम्हें कोई दिलचस्पी नहीं जानने में ?

कविता : अच्छा !

गौतम : हां, लोग ही अजीब थे।

कविता : (चुप)।

कविता : और दूं पानी ?

गौतम : बड़ी समझदार हो।

कविता पानी देती है।

गौतम : तुम कहां थीं ?

कविता : जाकर नहा डालो।

गौतम : इसकी जरूरत है क्या ?

कविता : (चुप)।

गौतम : कहां थीं तुम ?

कविता : एक्टर संजय के यहां।

गौतम : अच्छा–अच्छा, फिर तो समय अच्छा कटा होगा।

कविता : नहा लो, जम्हाई चली जाएगी।

गौतम : हां याद आया। आज हमारी 'मैरेज एनिवर्सरी' की रात थी।

कविता : थी क्यों, है।

विराम

गौतम : देखो ना ! पति अपने संग यह ले आया था पूरी बोतल। मुझे भी साथ देना ही पड़ा। औरत निहायत बातूनी–जैसे बात नहीं, खेल करती थी ... तुम कुछ पूछती क्यों नहीं ?

कविता : ठीक है।

गौतम : क्या ठीक है ?

कविता : वही लोग ...

गौतम : कौन ?

कविता : वही खेल।

गौतम : बड़ी मुष्किल से वे लोग गए। पुलिस के रिष्तेदार थे वे लोग। फोन किया। 'पुलिस वैन'आई, चले गए। पुलिस भी क्या चीज है ! (सहसा) तुम्हें प्यास नहीं लगी ?

कविता : कुछ और पियोगे ?

गौतम : कुछ पूछतीं क्यों नहीं ?

कविता : पांच बज चुके हैं।

गौतम : छोड़ो भी ... आज तो राज–भर जगना था, पर ....

कविता : यह टाई तो उतार दो।

गौतम : अरे हां उसी औरत ने बातों–बातों में मेरी टाई खींच ली। फिर यह ढीली गांठ–कहने लगी, ऐसे बांधिए। बताओ ... कैसी लगती है ? बड़ी तेज थी–झट पहचान लिया, जापान की है। और पूछो ना उसकी बातें।

कविता : पूछ तो रही हूँ, क्या पियोगे ?

गौतम : (आवेष में) क्या पियोगे ?

कविता : अब तक नौकर नहीं आए ?

गौतम : 'सोडामिंट की गोलियां कहां हैं ?

कविता : यहीं तो थीं। कहां है ? (सहसा) वह देखो वहां गिरी हैं।

गौतम : जरा उठाओ तो।

कविता : हां।

गौतम : अपने बटन बंद करो।

कविता : नंगा बदन कितना ....

गौतम : अच्छा, चाय ही ले आओ .. आज क्या है हमारी ? तुम्हारे ही मुँह से अच्छा लगता है। देखो न, उसने मोमबत्ती जला दी थी ... वह नाचने लगी। (सहसा) छोड़ो भी अब सोडामिंट की गोलियां।

कविता : अभी थोड़ी–सी राज है।

गौतम : तुम्हारे गले की ... नेकलेस ?

कविता : कहीं गिर गई ।

गौतम : कहां ?

कविता : चाय ले आती हूँ।

गौतम : अगर मैं तुम्हें पीछे से पकड़ लूँ ?

कविता अन्दर जाती है। गौतम 'सोडामिंट की गोलियां खाता है। कमरा और ठीक करता है। टेप सुनता है। सिगरेट जलाकर संगीत की लय में पीता है, घुआं छोड़ता चलता है, हाथ उठाता है। कविता चाय ले आती है।

गौतम : हां, हां, हां, संगीत की लय में कहीं बेसुरा नहीं।

कविता : क्या ?

गौतम : (ट्रे लेकर) इस तरह ... इस तरह ... उसी सुर–ताल में।

रखता है, उसी लय में और सिगरेट पीता है, उसी तरह। कविता एकाएक हंसती है। गौतम संगीत बंद करता है।

कविता : लो।

गौतम : चीनी डाल दी ? पूछना चाहिए, मैं कितनी 'षुगर' लूंगा ?

कविता : पता है।

गौतम : क्या पता है, पता है, रटती रहती हो ? हमें कुछ पता नहीं है।

कविता : हां ?

गौतम : दरअसल तुम्हें कुछ पता नहीं है।

कविता : जिस तरह तुम्हें नहीं है।

गौतम : तुम्हें कुछ जानने की 'क्यूरियॉसिटी' तक नहीं।

कविता : जानती हूँ।

गौतम : खाक जानती हो।

कविता : चुनौती देते हो ?

गौतम : थोड़ी और ... तुम भी लो।

कविता : चाय से अच्छी कॉफी होती है।

गौतम : लो भी ... प्लीज, साथ देने के लिए।

विराम

कविता : चूड़ी टूट जाने से इतना दोष क्यों हो जाता है ?

गौतम : मनुष्य एकाएक ऐसा क्यों होता है ?

कविता को छेड़ता है।

कविता : क्या करते हो ...

गौतम : मेरा शरारती होना बनावटी तो नहीं लगता ?

कविता : नहीं, नहीं तो। कुछ होना चाहिए ... कुछ भी हो।

गौतम : हां, कहीं कुछ भी।

कविता : रूक क्यों गए ?

गौतम : पर कभी एकाएक क्या कुछ हो सकता है, यह कोई नहीं जानता।

कविता : जीवन नाटक की तरह निष्चित नहीं होता।

गौतम : सारी चीजें बिजरी पड़ी हैं। ठीक क्यों नहीं करतीं ?

कविता : आज यह कमरा अच्छा लग रहा है।

गौतम : तुम भी कितनी अच्छी लग रही हो।

कविता : यह 'हेयर–पिन' ...

गौतम : यह क्या दारोगा की तरह ... ?

कविता : फिर क्यों कहा ... मैं कुछ जानना ही नहीं चाहती ?

गौतम : जानने के लिए यही है ?

कविता : मुझे यह आदत कहां से मिली ?

गौतम : जानने के लिए बड़ी–बड़ी चीजें पड़ी हैं।

कविता : बिना छोटी चीज जाने ?

गौतम : लोगों का दिमाग ही छोटा होता है।

कविता : स्त्री घर में रहती है।

गौतम : दुनिया इससे बाहर है !

कविता : उसकी दुनिया यही है।

गौतम : किसने कहा ?

कविता : किसी ने नहीं, यही उसका स्वभाव है।

गौतम : मुम्हें कब मैंने रोका ?

कविता : (चिढाकर) तुम्हें कब रोका ?

गौतम : मगर तुम ....

कविता : वही तो।

गौतम : तुमने यह पूछा, 'हेयर–पिन' कहॉ से आई है ?

कविता : मैं पूछना नहीं चाहती थी।

गौतम : क्यों क्यों नहीं।

कविता : अच्छा बताओ, कहां से आई ? किसकी है ?

गौतम : तुम्हारी नहीं हो सकती ?

कविता : नहीं।

गौतम : पर क्यों नहीं ?

कविता : क्योंकि नहीं लगाती !

गौतम : हम झगड़ा नहीं कर सकते ?

कविता : क्यों नहीं ?

गौतम : तो ... तो ...

कविता : यह पर्दा कैसे फटा ?

गौतम : कमजोर था।

कविता : तुम्हारी मिल का बना है।

गौतम : कमजोर, मजबूत कैसे बना सकता है ?

कविता : विज्ञापन तो मजबूती का था।

गौतम : विज्ञापन कमजोर को मजबूत नहीं बना सकता ?

कविता : जैसे तुम, वैसी मैं।

गौतम : जैसी तुम, वैसा मैं।

कविता : तुम और मैं, मैं और वह।

गौतम : वह और मैं, मैं और तुम।

कविता : कितना महान, आष्चर्यजनक।

गौतम : कितनी बहादुर–निडर।

कविता : श्रंगार करती हुई स्त्री अच्छी लगती है ना ?

गौतम : उससे भी ज्यादा। वह–बेपरवाह ... 'स्ट्रैंजर' ।

कविता : यह 'हेयर–पिन' कहां से आई ?

गौतम : हां, कहां से आई ? बताओ न !

कविता : हूँ। ...

कविता : किसकी है ?

गौतम : है किसी की ?

कविता : मैं अब कुछ नहीं पूछना चाहती ... कुछ नहीं।

गौतम : पूछ सकता हूँ, मेरी श्रीमती के जूड़े में यह पुष्प कहां से आया ?

कविता : क्यों नहीं ?

गौतम : पर मैं नहीं पूछता। मैं अब इतना ओछा नहीं।

कविता : हमारी जिन्दगी में कुछ निजी बातें हैं ?

गौतम : पता ही चल जाए, तो निजी कहां से रहे ? ... क्यों हमारी जिन्दगी में कुछ निजी बातें हैं ?

कविता : नहाने जाओ, वरना पानी चला जाएगा।

गौतम : फिर से पानी आ रहा होगा।

कविता : तुम्हें पता क्या नहीं है ?

गौतम : ऐसा कहो–हमें पता क्या नहीं ?

कविता : अच्छा, हमें पता क्या नहीं ।

गौतम : संजय ने कुछ ....

कविता : संजय की होड़ तुम क्या कर कसते हो ?

गौतम : तुम भी उस स्त्री के पैर की धूल नहीं ऐसी थी वह ...

कविता : (हंसती है।) ऐसा था वह।

गौतम : हंसना है तो खुलकर। हंसी पर भी क्या रोक ?

दोनों हंसते हैं।

कविता : ऐसा कभी सोचा भी न था।

हंसती है।

गौतम : टेक्सटाइल टाइगर ... माने जुलाहा।

हंसता है।

कविता : यह अलबम ?

गौतम : हां।

कविता : उसने देखा ?

गौतम : तुम्हारा नाम कितना अच्छा है ....? कविता।

कविता : कविता ....

गौतम : जुलाहा ... जु ... ला ... हा ।

कविता : संजय।

गौतम : तुम्हें भी दुगनी दवा लेनी होगी आज। तुमने भी किसके घर में पनाह ली !

कविता : क्या ?

गौतम : उसका सूना घर और वह। सारी रात ... उसने जरूर कहा होगा, मतलब जब तुमने उसके कमरे में पाूव रखा होगा, कि भीतर नौकरानी है, या कुछ ...

कविता : ऐसा कुछ नहीं कहा उसने।

गौतम : क्यों शरमाती हो ? 'दिस इज नेचुरल'।

कविता : उसने कहा, 'घर में कोई नहीं है ... ।

गौतम : और फिर भी तुम वहां रूक गई ?

कविता : कहां जाती ?

गौतम : तुम्हें डर नहीं लगा ?

कविता : डर क्यों लगता ?

गौतम : यानी एक अजनबी आदमी के साथ–अकेले रहते हुए ....

कविता : उनके सच बोलने के कारण विष्वास पैदा हो गया ....

गौतम : आदमी अकेला हो और एकाएक उसके कमरे में कोई अजनबी आ जाए ... 'हू लुक्स स्ट्रैंजर्स'।

कविता : अच्छा मान लो, तुम्हारे यहां कोई अकेली आई होती ।

गौतम : वही तो ... तुम अकेली संजय के कमरे में पहुँचीं।

कविता : वह एक नाटक पर काम कर रहे थे। हमने कॉफी पी।

गौतम : पीना–खाना तो हुआ ही ? फिर क्या हुआ ?

कविता : हम नाटक पर बातें करते रहे।

गौतम : सारी रात !

कविता : समय काटने के लिए मैं भी नाटक पढ़ती रही।

गौतम : और ...

कविता : और क्या ?

गौतम : मतलब वह अपने पार्ट का रिहर्सल करता रहा, तुम 'प्रॉम्प्ट' करती रहीं।

कविता : मतलब ?

गौतम : तुम भी तो कभी अभिनय किया करती थीं ?

कविता : आज याद आया ?

गौतम : हां, जैसे अभी ।

कविता : मैं 'डायलॉग' पढ़ती रही।

गौतम : और वह अपना रोल करता रहा। हूँ, यह बात हुई न। नाटक क्या था ?

कविता : नहीं जानते, नाटक क्या होता है ?

गौतम : जानता हूँ ... और क्या–क्या हुआ ?

कविता : कुछ नहीं।

गौतम : यह हो नहीं सकता।

कविता : वह तुम्हारी तरह नहीं था। वह एक शरीफ ... ईमानदार .... ताकतवर ...

गौतम : मैं शरीफ नहीं ?

कविता : तुम्हीं जानो।

गौतम : सच, क्या हुआ ?

कविता : मुझे जानते नहीं क्या !

गौतम : जितना तुम मुझे जानती हो।

सन्नाटा

गौतम : तुम्हें आज बताना ही पड़ेगा।

कविता : वहां जो हुआ, वह बताया नहीं जा सकता।

गौतम : मुझसे भी नहीं ?

कविता : नहीं।

गौतम : कसम, कभी किसी से नहीं कहूँगा।

कविता : कभी किसी से नहीं...

गौतम : (चुप है।)

विराम

कविता : ऐसा हुआ—मैं अन्दर गई। कमरे में कोई नहीं। दस्तक दी। भीतर से वह निकला। मैं बेहद डरी हुई थी। उसने कहा, तषरीफ रखिए। मैंने कहा, आपके घर में.... ? उसने कहा, मेरी वाइफ है, बैठिए। फिर मुझे जान में जान आई। बैठ गई। थोड़ी देर बाद मैंने कहा, बहन जी को बुलाइए। उसने कहा, चौके में हैं। कुछ देर और बीती। मैंने फिर कहा, बहन जी कहां हैं ? उसने कहा, चाय लेकर आ रही हैं।

गौतम : (सिगरेट सुलगाता है।)

कविता : थोड़ी देर बाद वह खुद चाय लेकर आया। मुझे शक हुआ, डर भी गई। बहन जी कहां है ? उसने बताया, उन्हें बेतरह चक्कर आ रहा है। दवा दे दी है। वह सो गई हैं। मुझे इत्मीनान हो गया और हम लोग कॉफी पीने लगे।

गौतम : कॉफी या चाय ?

कविता : कॉफी।

गौतम : शुक्र है।

कविता : फिर विवाह का 'अलबम' दिखाया।

गौतम : अलबम।

कविता : कष्मीर में सुहागरात। नप बंगले में। बर्फ पर...

गौतम : तमलब, यही सब होता रहा, कोई खास बात नहीं ?

कविता : यह सब उसी खास बात की भूमिा थी। फिर वह ड्रिक्स ले आया। मैंने पूछा, आपकी 'वाइफ' की तबीयत कैसी है ? वह बोला, भीतर से कमरा बन्द कर सो रही हैं।

गौतम : ऐसा नहीं हो सकता।

कविता : जो हुआ है, सुनते क्यों नहीं ?

गौतम : वह कोई नहीं बता सकता।

कविता : बता तो रही हूँ। (विराम) मैंने 'ड्रिंक' लेने से इन्कार किया, वह अकेले पीने लगा।

गौतम : यह कैसे हो सकता है !

कविता : फिर बड़ी—बड़ी बातें करने लगा।

गौतम : 'आई लाइक स्ट्रैंजर्स'।

कविता : मेरी उंगलियों की तारीफ करने लगा।

गौतम : नाम में शुभ क्या होता है ?

कविता : एकाएक मेरी ओर झपटा। मैं उसकी बीवी को पुकारने लगी। दरवाजा पीटने लगी, और वह बोला, बीवी घर में नहीं।

गौतम : ....कायर... बुजदिल !

कविता : फिर वह मुझे दबोच लेने के लिए दौड़ा।

गौतम : उसने साहस दिया–नया विष्वास–नया जीवन।

कविता : शराब पी थी उसने।

गौतम : एक अभूतपूर्व अनुभव, एक अभूतपूर्व विष्वास...

कविता : मेरे साथ बलात्कार हुआ है।

गौतम : हम सच क्यों नहीं बोल सकते ?

कविता : सच कह रही हूँ।

गौतम : मैं जानता हूँ तुम्हें।... तुम एक आदर्ष पत्नी हो....

कविता : नहीं।

गौतम : मेरा विष्वास है।

कविता : वह टूटना चाहिए।

गौतम : टूटना चाहिए ?

सन्नाटा

कविता : आदर्ष पति... आदर्ष पत्नी !

गौतम : यह विष्वास जरूरी है...

कविता : वह झूठ है।

विराम

कविता : झूठ अब हमारी मदद नहीं कर सकता।

गौतम : हमारा दाम्पत्य जीवन सुखी है। हम दोनों चरित्रवान हैं। हम सुख–चैन की नींद सोते हैं। हमारे खानदान का नाम है। हमें ईष्वर ने सब–कुछ दिया है। हमें किसीी चीज की कोई कमी नहीं। हम सुखी हैं।

कविता : जीवन इसी तरह बिना किसी परिवर्तन के चलता रहता है–बड़ी से बड़ी घटनाएं उसमें खो जाती हैं–उनकी पहचान तक नहीं रह जाती, पर क्षण अचानक आता है–एक ऐसा क्षण–जीवन–नाटक की तरह निष्चित नहीं हो नहीं सकता।

सन्नाटा

गौतम : शहर में इतना बड़ा दंगा हुआ। कितने जले, मरे, तबाह हुए और हमें कुछ पता नहीं ! कुछ जानने की इच्छा ही नहीं हुई।

कविता : हम एक–दूसरे को नहीं जानते।

गौतम : जितना जरूरी है, उतना जानते हैं।

कविता : क्या जानते हैं ?

गौतम : जितना जानते हैं।

कविता : वह क्या है ?

गौतम : तुम्हें पता होना चाहिए।

कविता : फायदा ?

गौतम : हम सुखी हैं।

कविता : क्यों ?

गौतम : जाओ। कपड़े बदल लो।

कविता अन्दर जाती है।

गौतम : यह क्या बकवास कर रहा हूँ ! कब तक इस झूठ के भंवर में पड़ा रहूँगा ! ये झूठे शब्द कल तक मुझे घेरे रहेंगे ! यह करफ्यू कब टूटेगा ? हे ईष्वर, इतना भी साहस नहीं कि स्वीकार कर सकूँ। क्या हो गया है हमें ? जो इतना सच है, प्रकट है, निर्भय होकर क्यों नहीं कह पाता ? हे ईष्वर, मुझे बल दो। कविता ... कविता . सुनो ...

कविता आती है और उसकी उन्मत्त हंसी।

कविता : हेअ ... मेरी ओर देखो ... देखो ... अब डरते क्यों हो ?

गौतम : क्या हो गया ?

कविता : बस्स, हो गया। (हंसती है।) डरो नहीं ...

गौतम : तुम्हें डर नहीं ?

गौतम को छूती है।

कविता : देखो, मैंने कोई प्रष्न नहीं किया।

गौतम : विष्वास करो, पहले मुझमें कोई प्रष्न नहीं था, फिर झूठे प्रष्नों का सहारा लिया ... और जब दुबारा ... फिर मुझमं पहली बार प्रष्न जागे फिर निरूत्तर कर दिया।

कविता : वह जिस नाटक का 'रिहर्सल' कर रहा था, उसका नाम था 'नरक का रहस्य'। हां, झूठ और कायरता ही तो नरक है। उस नाटक की कथा ... वह युवक और युवती। मैं अभिनय कर सकती हूँ। मैं वह नहीं हूँ जो थी .. . मैं जो थी .. वह नहीं थी .... वह नहीं थी ... मुझे होना पड़ा था। पर क्यों ? कम से कम उस नाटक में तो कुछ और हो ही सकता था ... । जीवन में न सही। पर इसी जीवन में क्यों नहीं ? यह अभूतपूर्व, महान, आष्चर्यजनक जीवन ... जड़ जीव चेतन प्राणियों से भी आगे, बहुत आगे ... यह अनन्य मानव–जीवन। वह युवती कुमारी बस एक बार भागी थी ... बस एक बार ... किसने भगाया था उसे ? मैंने .... हमने .... सबने। वह प्रेम ... यह शादी ... । वह जीवन, यह कायरता। सत्य और झूठ ... नरक का रहस्य। मैं अब नहीं भागूँगी।

गौतम को अंक में बांध लेती है।

गौतम : तुमने उसे अन्दर देखा ... वह सोई पड़ी है न। ज बवह यहां पहली बार आई मैंने उसे देखकर अनुभव किया .... मैं कितना डरा हूँ ... फिर मेरी कायरता। छी–छी–छी । हे ईष्वर, मुझे सच बोलने का साहस दो ... ।

मैंने उसके साथ बलात्कार करना चाहा, क्योंकि उसके अलावा और कुछ कर ही क्या सकता था ! वह मुझे इसी तलवार से आर–पार बेधकर चली गई। मैं आवि से अन्त तक झूठ, केवल झूठ बोलता रहा। जैसे केवल वही मेरी बुनियाद थी, वही मेरे भीतर ··· वही मेरे बाहर। वह फिर लौटी ··· मुझे जगाया। मैं थरथर कांप रहा था। उसने कहा, यही कमरा पूरा शहर है ··· शहर–भर में जो लूट, फूंक, हत्या, बलात्कार हुए हैं, वे इन्हीं बन्द अंधेरे कमरों से निकलकर शहर की सड़कों–गलियों में गए हैं। ··· जो सहज है, मानवोचित है, उस पर इतनी पाबन्दी क्यों ? इतना डर क्यों ? जो अपने भीतर का करफ्यू नहीं तोड़ते, वही बाहर करफ्यू लगाते हैं और उसे तोड़ने के लिए अपराध करते हैं। उसे अंक में लेकर पहली बार मुझे ईष्वर की याद आई ··· तुम्हारी याद आई ···

भीतर से मनीषा आती है।

मनीषा : हैलो।

दोनों उसे अपलक देखने लगते हैं।

गौतम : मेरी पत्नी कविता ··· मनीषा।

कविता : मनीषा।

मनीषा : और दो परिचय।

कविता : कोई जरूरत नहीं।

मनीषा : विष्वास नहीं करा चाहिए।

गौतम अन्दर जाने लगता है।

कविता : अब कहां भागते हो ?

रोक लेती है।

मनीषा : पहले मुझे यहां से भागना पड़ा था।

कविता : मैं भी भागी थी एक बार।

मनीषा : बाहर पुलिस ने पकड़ लिया। बोला, 'स्ट्रीटवाकर'। (हंस पड़ती है।) पुलिस स्टेषन पर इन्सपेक्टर ने कहा, 'नक्सलाइट'–ठीक उसी तरह, जैसे लोग अब तक मुझे 'डियर, डार्लिंग, ब्रेव, फ्लर्ट, स्वीटी' वगैरह–वगैरह कहकर मेरा अपमान करते थे। (हंसती है।) एक ओर 'स्ट्रीटवाकर', दूसरी ओर 'नक्सलाइट' ··· ताज्जुब है न !

कविता अजब तरह से हंस पड़ती है और अपने को संभालती हुई सोफे पर जैसे गिर पड़ती है।

कविता : रहे चाहते सुख, बिन जाने परिभाषा सुख की ठहरे जल के कमल सरीखे
रहे मौन हम भूल महत्ता बहते जल की क्या है
वह आनन्द जो कभी व्यक्त नहीं हुआ
वह अमर जीवन जो अब तक जिया नहीं गया और जिस पर
किसी को शोक तक नहीं हुआ।

सन्नाटा

गौतम : यह सब क्या कह रही हो ?

कविता : (उठती है।) न दुख है, न सुख सत्य वह है जो इन्हें मिलाता है।

न रात है, न प्रातःकाल सत्य वह है जो इन्हें जोड़ता है।

गौतम : कविता ! जानती हो यह कौन हैं ?

कविता : जानना शुरू किया है, मैं कौन हूँ।

गौतम : यह कौन हैं ?

कविता : यह हैं, इतना ही काफी है। आज मैं अपने 'मैं' से अलग हटकर जब अपने आपको देख रही हूँ तो पहली बार अनुभव हो रहा है, जो दूसरा है, वह है, उसके बारे में कोई निर्णय मैं नहीं दे सकती। परिचय का मतलब है निर्णय दे देना और एक फैसला पा जाना। यह पाना–देना भ्रम है।

मनीषा : यह आपकी पत्नी हैं ?

गौतम : जी हां, क्यों ?

मनीषा : कोई पत्नी कभी इस तरह सोच सकती है, मेरे लिए यह आष्चर्यजनक है।

कविता : क्या हमस ब आष्चर्यजनक नहीं ? अपने भीतर हमस ब कोई और हैं। जो हैं, उसे कभी ढूंढ़ा नहीं। जो हैं, उसे कभी देखा नहीं। जब देखा तो उसे कभी कबूल नहीं किया। संबंधों के एक परिचय जाल में हम जकड़े हुए हैं। इमें दूसरों से एक परिचय मिल गया है। वही हमारी परिभाषा है। हमने कभी प्रष्न नहीं किया, आखिर मैं कौन हूँ ? मेरा मैं क्या है ? दूसरों की दी हुई परिभाषा, परिचय हम क्यों ढो रहे हैं ? जो नहीं है, उसे हम क्यों स्वीकार कर लेते हैं ? जो है, उसे स्वीकार क्यों नहीं करते ?

मनीषा : स्वीकार करते ही हम छोटे हो जाएंगे, यह जो आदिम भय है यही हमें स्वीकार नहीं करने देता।

कविता : तुम्हें भी भय है ?

मनीषा : मैं स्वतंत्र हूँ, यही है मेरा भय, कि मेरी स्वतंत्रता कोई छीन न ले। आज मैंने पहली बार देखा ... हां देखा, पहली बार देखा–मेरी स्वतंत्रता केवल फैषन है। इसमें कोई दम नहीं। इसे मैने अर्जित नहीं किया। यह मेरे रक्त और संस्कार में नहीं, वरना मैं इतनी वाचाल नहीं होती। मैं अपनी बाहरी स्वतंत्रता को अपनी मुक्ति मानती थी। इसी लिए मैं स्वतंत्र बनती थी, खेल करती थी, स्वतंत्र होती नहीं थी। बनने और होने का अन्तर आज मालूम हुआ। इतनी बड़ी कीमत देकर ...

कविता : इतनी बड़ी कीमत देकर ... !

गौतम : कल तक नहीं जानता था, कभी जानना चाहा भी नहीं, कौन हूँ मैं ? क्या है मेरा जीवन ?

कविता : मैं अभी लौटकर जब आई ....

गौतम : एक क्षण मुझे लगा मैं तुमसे अब ईमानदार हो जाऊं। मैं स्वीकार कर लूं मैं क्या हूँ। पर दूसरे क्षण मैं झूठ बोलने लगा। झूठी कहानियां गढ़कर तुम्हें बताने लगा। (रूककर) आज मुझे लगा, मैं जो कुछ करता हूँ, उसका कर्ता मैं नहीं हूँ। मैं बहता हूँ–जैसे पेड़ से टूटकर कोई पत्ता हवा में उड़ता है, जैसे पानी की धार में कोई तिनका बहता है।

कविता : झूठ का सहारा मैंने लिया। मेरे प्रेम में था झूठ, मेरे विवाह में है झूठ। मेरे हर व्यवहार में झूठ ही झूठ है। सोचती थी अब यहां लौटकर सच रहूँगी, सच बोलूंगी। पर तुमसे बातें करते ही सरासर झूठ बोलने लगी। एक ऐसी झूठी कल्पित कहानी गढ़ने लगी ...

गौतम : पर वह कहानी झूठी कल्पित नहीं थी, जो यहां हुआ है, वही थी वह।

कविता : पर मैं दूसरों की घटनाएं क्यों सुनाती हूँ ?

गौतम : मैं दूसरा हूँ क्या ?

कविता : तुम दूसरे हो, तुम तुम हो, मैं मैं हूँ–यही तो कभी स्वीकार नहीं किया, तभी तो इतने झूठों की जरूरत पड़ी।

मनीषा : अकेला कोई एक सच नहीं बोल सकता। उसके लिए दो चाहिए। जैसे अकेले कोई लड़ नहीं सकता, अकेले कोई हो नहीं सकता। (रूककर) आज रात आप दोनों की शादी की सालगिरह थी !....

कविता : थी नहीं, है।

कविता तेजी से अंदर जाती है। मनीषा मोमबत्तियां जलाती है।

गौतम : जरा–सी तेज हवा बहेगी, ये मोमबत्तियां बुझ जायेंगी। तुम कह सकती हो कि ये फिर जला दी जायेंगी। प्रकाष, फिर अंधकार, फिर प्रकाष, एक से दूसरे में जो गति है, यात्रा है, क्या वही जीवन नहीं ? यह केवल है ? केवल है। ऐसा 'है' जो एक क्षण भी कहीं निर्भर नहीं। हर क्षण जो बदल रहा है, इसे 'है' भी कैसे कहा जा सकता है ? मनीषा, मनीषा !

मनीषा : मैं अपने आपको उत्तर दे लूं, यही बहुत है। सबको अपना उत्तर खुद ढूंढ़ना होगा।

गौतम : खुद ! अकेले ! वही तो हम करते रहे हैं। जो कुछ किया, कोई प्रष्न जगा, अकेले चुपचाप, 'जस्टीफाई' कर लेते हैं।

मनीषा : वह अपने आपको अस्वीकारना है ।

गौतम : हमने वही किया है।

मनीषा : स्वीकार करते ही हम कर्ता हो जाते हैं। वह कर्ता अकेला व्यक्ति ही होता है। पर स्वीकार करते ही वह सामाजिक हो जाता है।

हाथ के जलते प्रकाष को गौतम को पकड़ा देती है, स्वयं अंधेरे के एक कोने में खड़ी होकर।

मनीषा : मुझे वह प्रकाष नहीं चाहिए जिसमें खुद को न देख केवल दूसरों को देखती रहूँ। स्वतंत्रता, विद्रोह के नाम पर केवल प्रिय के पीछे दौड़ती रही। इस दौड़ में जितना कुछ खोया, नष्ट हुआ मेरा, उसका अर्थ क्या है ? दूसरे मुझे कहें आधुनिक, अभूतपूर्व, 'स्ट्रेंजर', यह क्या दूसरों से बिकना, भीख मांगना नहीं ? मैं क्या हूँ खुद अपनी नजरों में केवल यही है मेरा ... यही है मेरी प्राप्ति।

नये वस्त्रों में कविता आती है।

मनीषा : मैं कृतज्ञ हूँ ... तुमसे ... तुमसे। आज अपने से कृतज्ञ जो हूँ !

कविता : अपने आप से बाहर निकलकर फिर वापस लौटना, फिर वहीं लौट आना नहीं है। तट से कूदकर गहरे जल की धार में चले जाना, बहना नहीं, संगीत का अंतरा है। तैरकर अपनी बांहों से, तट पर वापस आ जाना, उसी संगीत का है स्थाई। आज जो अचानक प्राप्त हुआ संबंध बोध, वह फिर कहीं खो न जाय, आषीष दो, मैं रहूँ सजग।

गौतम : कौन–सा मैं कब कहां नहीं रो पाया, दे पाया, उसका हिसाब देना होगा। मैं तुम्हें दूं, तुम मुझे दो, हम तुम्हें दें ... तुम हमें दो। जब मैं–हम हो जायेगा, तभी टूटेगा यह करफ्यू। नहीं तो बार–बार टूटकर और मजबूत, घना होता चला जायेगा।

तीनों के ओठों से वही शब्द संगीत बन फूट पड़ता है। संजय भी आ उसमें शामिल होता है।

कौन–सा मैं कब कहां नहीं रो पाया
ले पाया, दे पाया।
देना होगा हिसाब
भुगतान करना है
कौन सा मैं कब कहां नहीं रो पाया।
मैं तुम्हें, तुम मुझे हम तुम्हें
तुम हमें।
देना है हिसाब
भुगतान करना है।
कौन सा मैं कब यहां नहीं रो पाया....

(पर्दा)